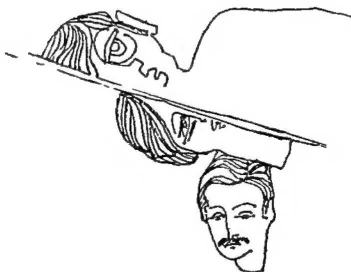
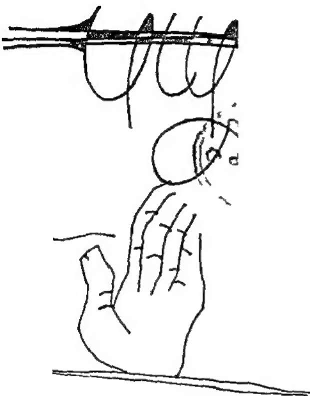
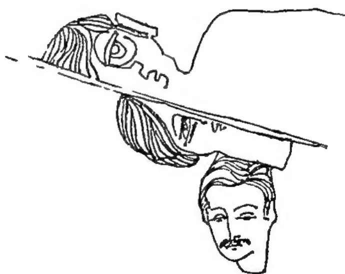
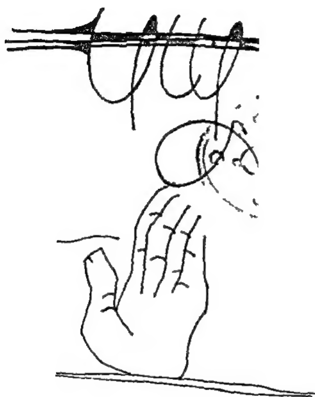




डॉ० पुरुषोत्तम आसोपा





डॉ० पुरुषोत्तम आसोपा

पुरुषोत्तम आसोपा

प्रकाशक
सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बिस्सों का चौक बीकानेर
मुद्रक
विकास आर्ट प्रिंटर्स
रामनगर शाहदरा दिल्ली ३२
संस्करण प्रथम, १९८
आवरण अवधेश कुमार
मूल्य सोलह रुपये मात्र

PAPPOO
A Novel by
Purusottam Aasopa
Price Rs 16 00

पप्पू

अन्तर्कथा

इससे पहले कि आप लोग इस रचना की कमजोरियाँ बतलाकर इसकी छीछालेदर करना शुरू करें, मैं प्रारम्भ मे ही यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह मेरी अपनी रचना नही है। न तो मैं इसका लेखक हूँ न अनुवादक। कहीं स चोरी करके भी मैंने इसे नही लिखा है।

यह पप्पू की निखालिस अपनी रचना है। लेकिन आपको यह जानकर आश्चय होगा कि लिखा इसको पप्पू ने भी नही है। और जहा तक पप्पू के द्वारा इसे कहे जाने का प्रश्न है वह बात भी इस पर लागू नही होती क्योंकि इसके बारे म यदि आप उससे कुछ पूछेंगे तो न केवल वह विस्मित रह जाएगा बल्कि दढतापूवक इस बात का प्रतिकार भी करेगा कि अपने जीवन के बार म उसन कभी किसी स कुछ भी कहा है। इस पर भी मैं यही कहता हूँ कि यह पप्पू की ही रचना है किसी और की नहीं।

बात शायद पहेली बन गई है इसलिए सब कुछ खुलासा करके आपकी परेशानी दूर कर दू।

यह एक लम्बी किन्तु रोचक कहानी है। लेकिन पप्पू के जीवन से सम्बंधित न होकर मेरे अपने जीवन से सम्बंधित है। प्रासंगिक होते हुए भी आपके लिए उसे जानना जरूरी है।

और बात आज की नही है, लगभग दस वष पूव की है। उन दिनो की है जब मैंने डॉक्टरी की अपनी शिक्षा ताजा-ताजा समाप्त की थी। मेरे युवा मन म तब बहुत जोश भरा हुआ था। सोचता था डाक्टर बनकर मैं गरीबों के स्वास्थ्य लाभ के लिए अपने जीवन को समर्पित

कर दूगा। वस्तुत तब मेरी कल्पनाएँ आदर्श के क्षेत्र में ऊँची ऊँची उडानें भरती रहती थी।

लेकिन वे सारी बातें एक अपरिपक्व व्यक्ति की हवाई कल्पनाए मात्र बनी रह गई। यथार्थ के एक ही प्रबल थपेडे में कल्पना के मेरे वे महल भरभराकर गिर पड़े। मैं जैसा सोचता था वैसा कुछ भी नहीं हुआ। इसके विपरीत मेरे जीवन में जो कुछ भी घटित हुआ उसके लिए मैं बिल्कुल तैयार नहीं था।

मुझे एक ऐसे सुदूर गाँव में नियुक्ति का आदेश मिला जहाँ नाम भर की एक छोटी सी डिस्पेंसरी थी। न तो वहाँ दवाइयाँ थीं न उपयोगी उपकरण। यहाँ तक कि प्राथमिक उपचार करने लायक भी साधन उपलब्ध नहीं थे। उन प्रतिकूल दशाओं में मैं भला क्या और कितनी सेवा करता?

फिर भी प्रारम्भ में मैंने हिम्मत नहीं हारी। सीमित साधनों के रहते हुए भी मैं सामर्थ्यानुसार सेवा करता रहा। मैं सोचता था कि उच्चाधिकारियों के सामने स्थिति स्पष्ट कर देने पर वे मेरी भावनाओं का आदर करेंगे और सहायता करेंगे। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। मेरे उन प्रयासों से उल्टा मेरा मोहभंग ही हुआ।

मैंने उच्च अधिकारियों का ध्यान अपनी कठिनाइयों की ओर खींचने की चेष्टा की और उस छोटी सी डिस्पेंसरी के लिए आवश्यक साधन जुटाने के लिए सहायता देने की कामना की। किन्तु उन लोगों ने मेरी बात ठीक से सुनने की जगह मुझे दुत्कार-सा दिया। ऊपर से यह प्रदर्शित किया कि हमने तुम्हें नौकरी देकर जो उपकार किया है उसे ध्यान में रखते हुए मुझे उनका शुक्रगुजार होना चाहिए और इस नाते उनके लिए नई नई दिक्कतें खड़ी नहीं करनी चाहिए।

उनके इस रवैये से मेरे स्वाभिमान को ठेस पहुँची। उम्र के आवेग में आकर मैंने शर्मनाक समझौते करने की अपेक्षा नौकरी छोड़ देना बेहतर समझा। मैंने नौकरी से तत्काल त्यागपत्र दे दिया। क्योंकि तब मैं यह मानकर चलता था कि अपने गुजारे लायक पैसा तो मैं कहीं भी रहकर अर्जित कर लूँगा। डाक्टर होने का अहंकार मुझमें इतना प्रबल

था कि मैंने नौकरी छोडने मे तनिक सा भी सकोच नही किया।

लेकिन कई दिनो तक इधर उधर धक्के खाने पर भी जब मुझे दूसरी कोई नौकरी नही मिली तब मुझे अपनी भूल का अहसास हुआ। नौकरी पाने की आशाएँ पूरी न होते देखकर मैंने अपना खुद का क्लीनिक खोलने का निश्चय किया। सीमित पूजी से डॉक्टरी जैसा महँगा व्यवसाय चालू करना कितना कठिन काय है इस सत्य को मैं उसी समय पहचान सका। फिर भी गुजारा करने के लिए मुझे कुछ न कुछ तो काय करना ही था। इसलिए किसी तरह जुगाड कर शहर के उस कोने मे मैंने एक छोटी सी दुकान किराए पर ले ली और अपना क्लीनिक खोलकर बैठ गया।

वे मेरी मुश्किलो के दिन थे। मरीज इतने कम आते थे कि उनसे होने वाली आमदनी स मेरी दैनिक आवश्यकताएँ भी बडी कठिनाई से पूरी हो पाती थी। मैं किसी तरह अपनी गुजर कर रहा था।

उन दिना मेरे समक्ष कोरी आर्थिक चिताएँ ही नही थी अन्य चिताएँ भी मुह बाए खडी रहती थी। दुकान मे फालतू बैठना भी एक भारी समस्या थी। दिन-भर दुकान म बैठना भी जरूरी था और बिना काम समय गुजारना पहाड जसा भारी लगता था। चिता क उन दिनो म मुझे आत्ममुक्ति का कोई उपाय नही सूझता था। सुबह होने के साथ ही समय अपनी समूची गुरुता से मुझ पर आ गिरता था और मैं अपने कमजोर कधा पर उस मुदा समय को शव की तरह दिन-भर ढोता जाता। पर उससे मुक्त नही हो पाता।

पढन का शौकीन मैं कभी नही रहा। पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढन मे ही मेरी अध्ययन पिपासा सतुष्ट हो जाती थी। इसलिए उनके अलावा दूसरी पुस्तकें पढना मुझे सदा स उबाऊ प्रयास लगता था। अपने फालतू समय को गपशप मे एव घूमन फिरने म ही व्यतीत करने का मैं आदी था। किन्तु उन दिनो जब अपनी दुकान पर मुझे अनिवायत फालतू बठ रहना पडा तब समय व्यतीत करन के लिए पुस्तकों का सहारा लेने के अलावा मेरे पास अन्य कोई विकल्प नही रहा। मजबूर होकर मैंन फुटपाथी साहित्य पढना शुरू किया पर उनके सस्तपन स

मैं शीघ्र ही ऊब गया। फिर मैंने ज्योतिष की पुस्तकें पढ़नी शुरू की और उनकी आधार भूत बातें भी सीख गया लेकिन उनको अधिक विस्तार से पढ़ने की रुचि मुझमें उत्पन्न नहीं हुई।

इसी बीच एक घटना घटित हुई। बात साधारण थी पर इस रचना के सन्दर्भ में वह बहुत बड़ी घटना थी। मैं जिस दुकानदार से पढ़ने के लिए किताबें लाता था उससे मेरी अब हल्की फुल्की दोस्ती हो गई थी। अब जब मैं उसके पास जाता था तो मेरी रुचि के अनुरूप वह स्वयं ही पुस्तकें छांट दिया करता था। कई बार वह ऐसी पुस्तकें पहले से ही छांटकर रख दिया करता था जिन्हें वह मेरी रुचि के अनुकूल पाता था।

एक दिन उसने मुझे एक पुस्तक पढ़ने के लिए दी। उसके द्वारा की गई तारीफ़ से प्रेरित होकर मैंने भी पुस्तक में विशेष रुचि ली और उसे आद्योपान्त पढ़ गया। पुस्तक ने मुझे इतना आकर्षित किया कि मैंने उसे एकसाथ कई बार पढ़ डाला।

पुस्तक सम्मोहन से सम्बन्धित थी। 'सर्च फार ब्राईडे मरफी' नामक उस पुस्तक में लेखक ने एक ऐसी महिला का उल्लेख किया था जिसने सम्मोहित अवस्था में प्रयोगकर्ता की प्रेरणा से अपने वर्तमान जीवन की विगत घटनाओं का ही नहीं अपने पिछले दो जन्मों की घटनाओं का उल्लेख भी कर दिया था।

पुस्तक के विवरणों पर मुझे विश्वास नहीं हुआ क्योंकि तब मैं अवस्था के उस दौर में से गुजर रहा था जिसमें बातों को तर्क के आधार पर ग्रहण किया जाता है विश्वास के आधार पर नहीं। मैं तब जन्मान्तर की बात को एक आकर्षक व रोचक कहानी से कहीं अधिक नहीं समझता था। इसलिए मुझे पुस्तक के विषय ने अधिक प्रभावित नहीं किया किन्तु पुस्तक ने मुझमें *सम्मोहन-कला के प्रति तीव्र रुचि* पैदा कर दी। मैंने खोज खोजकर वैसी पुस्तकें पढ़नी शुरू कर दी। धीरे-धीरे मैं सम्मोहन-कला के सिद्धान्तों से परिचित हो गया। फिर अपनी कुतूहल वृत्ति से मैंने उसके छिटपुट प्रयोग भी करने शुरू कर दिए।

लेकिन मेरी यह रुचि शौक के स्तर से ऊपर नहीं उठी। न तो मैं ही इस सम्बन्ध में तनिक भी गम्भीर था न मेरे सब्जेक्ट ही जिनको मैं

सम्मोहित किया करता था।

इसी बीच मेरी दुकान पर मरीजो की सख्या भी तनिक बढ गई थी लेकिन इतनी नही कि वह मेरे फालतूपन को पूरी तरह दूर कर सके। लेकिन इससे एक लाभ यह हुआ कि उस मोहल्ले म जब मेरा परिचय-क्षेत्र बढने लगा। लोग अब बिना कारण भी मेरी दुकान पर आकर बतिया जात थे। खास तौर से मोहल्ले के नवयुवक गपशप करने के उद्देश्य से मेरी दुकान पर आने लगे। उनसे बातचीत करने म मेरा वक्त आसानी से गुजर जाता। वे लोग या तो बेरोजगार थे या कालेजो मे धक्के खा रहे थे। इसलिए फालतूपन से आक्रान्त रहत थे और ऐसी ही निरथकता मे समय गुजारने के लिए मजबूर थे। समान वयस एव विचारो के कारण मेरे साथ उनकी मित्रता सी हो गई थी। इसलिए उनकी मण्डली फालतू समय मे अक्सर मेरी दुकान पर जमी रहती।

पप्पू भी उसी मण्डली का एक सदस्य था। वह भी औरो के साथ या कभी-कभी अकेला ही मेरी दुकान पर आ जाता था। लेकिन उसका व्यक्तित्व अपने साथियो से साफ साफ भिन्न नजर आता था। शिष्ट, सौम्य और मृदुभाषी तो वह सदा स था लेकिन उसके व्यक्तित्व को भिन्नत्व दिखाने वाली एक खास बात यह थी कि वह प्राय चुप ही रहा करता था। न तो वह बहसो मे भाग लेता था न तर्कों के लिए उग्र ही होता था। खामोश सा बैठा रहता या दूसरो की बातें सुनता रहता।

सबके बीच उपस्थित रहत हुए भी अधिकतर अपने में ही कही खोया रहता। और जब बोलता था तो ऐसा लगता जैसे आवाज मुह से न आकर उसके भीतर से कही से आ रही हो। गहरे कुएं स जल खीचने की तरह वह शब्दो को भीतर से सायास खीचकर बाहर निकालता हुआ-सा लगता। और जब मौन हो जाता तो ऐसे कि किसी से झेला नही जाता। उसमे प्रतिभा तो थी किन्तु उस सामने लान मे उसे सकोच होता था। उसमे एक मारक जडता एव विचित्र प्रकार की उपेक्षा वृत्ति के दशन भी मुझे हुए। जब उसे विश्वास म लेकर कोई काय दिया जाता तो वह उसे लाघव और चतुराई से कर दिखलाता। फिर

भी उसमे गजब का दब्बूपन और संकोच भाव भी दृष्टिगत होता।

पप्पू के ऐसे अजीबोगरीब आचरण ने अब उसके भीतर की ग्रंथियों ने मुझे बहुत आकर्षित किया। मुझे मालूम था कि पारिवारिक दृष्टि से वह सम्पन्न और खुशहाल है फिर भी उसके असामान्य आचरण ने उसमें मेरी रुचि जाग्रत् कर दी। मुझे यह अपनी सम्मोहन-कला को परिमार्जित करने का एक अच्छा सब्जेक्ट प्रतीत हुआ।

मैंने सोचा कि उसके बचपन में कुछ न कुछ ऐसा असामान्य जरूर हुआ होगा जिसने उसके विकासोन्मुखी व्यक्तित्व पर अंकुश लगा दिए होंगे। उनसे जूझता उसका बालमन अवश्य विकास के अवसरों को न पाकर एसे आत्म विरोधी स्वरूप को पा गया होगा। अस्तु, मैंने पप्पू पर प्रयोग करने की ठानी।

पप्पू को इसके लिए मैंने कैसे तैयार किया यह एक लम्बी कहानी है जिसे यहाँ देना फालतू है। यहा बस इतना भर बतला देना पर्याप्त है *कि मैंने बड़ी गम्भीरता से उस पर प्रयोग किए थे।* *सम्मोहित दशा में* मैं उसे धीरे धीरे अपने जीवन के पिछले इतिहास को दोहराने के लिए कहता। इसके लिए मैंने सम्मोहन कला के सिद्धान्तो के अनुसार छोटे छोटे प्रश्नों की एक प्रश्नावली बना ली थी। प्रश्न ऐसे थे कि जिनसे व्यक्ति के आचरण का व्यावहारिक पक्ष ही नही अनुभूति पक्ष भी स्वयं स्पष्ट होता चलता था। पप्पू को सम्मोहित कर मैं उसे उन मनोदशाओं मे से गुजार ले जाता जिसमे से अपने वास्तविक जीवन मे वह सचमुच गुजर चुका था। पप्पू के द्वारा बतलाई गई बातो के नोटस लेता जाता। लेकिन सम्मोहन से हट जाने पर मैं उन बातो की तनिक-सी भी चर्चा पप्पू से नहीं करता। इधर उधर की बातो में ही उसका ध्यान बटा देता।

जब वह अपने सहज रूप मे होता था तब मैं उसके वतमान के बारे में बड़ी चतुराई से प्रश्न पूछता रहता। उसके मित्रो, पड़ोसियो से भी अप्रकट रूप से पूछ पूछकर मैंने पप्पू एवं पप्पू के परिवार की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर संगृहीत कर ली।

इस प्रकार मेरे पास पप्पू के जीवन का समग्र इतिहास छोटे छोटे

टुकड़ो मे इकट्ठा हो गया। अपने अध्ययन को व्यवस्थित कर विश्लेषित करने की मैं सोच ही रहा था कि एक दूसरी घटना घटित हुई जिससे मेरा कार्य यकायक रुक गया। मुझे अचानक ही विदेश मे एक अच्छी नौकरी मिल गई और मैंने वह दुकान बन्द कर दी और सब कुछ छोड़ छाड़कर मैं विदेश चला गया।

विदेश मे अपनी अतिव्यस्तता और खुशहाली मे मैं भारत की ये सारी बातें बिल्कुल ही भूल गया। पूरे दस वर्षों बाद अपने पुराने कालेज की हीरक जयन्ती के अवसर पर निमन्त्रण पाकर मैं भारत लौटा। यहा सब कुछ बदल गया था। शहर के उस कोने मे जहा मेरी दुकान थी वहा अब पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। इतना परिवर्तन कि मैं अपनी दुकान भी नहीं पहचान पाया।

'पप्पू' की मुझे याद ही न आती यदि कालेज की ओर से मुझे 'बाल विकास मे पारिवारिक परिवेश की भूमिका' विषय पर भाषण के लिए आमन्त्रित नहीं किया जाता। भाषण तो मैंने दे दिया पर पप्पू के जीवन की सामग्री ने मुझे दुबारा आकर्षित किया। गॉव जाकर मैंने खस्ताहाल अपने सामान मे से पप्पू के जीवन से सम्बन्धित नोटस ढूढ ही निकाले।

उन्ही को जोड़ जोड़कर मैंने पप्पू के जीवन के प्रारम्भिक अंश की कहानी का रूप दिया। जहा गैप्स रह गए थे उनको मैंने अपने अध्ययन एव अनुभव से भर दिया है। इसलिए इसमे अनुभूतियाँ पप्पू की हैं पर भाषा मेरी।

'पप्पू' के निर्माण की यही पृष्ठभूमि है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि मैंने यह कार्य क्यो किया है? उसके लिए क्या मुझे आप जैसे जागरूक पाठको को यह भी बतलाना पड़ेगा कि इसमे बच्चा और उसका परिवेश दोनो ही कुछ अनुत्तरित प्रश्नो का समाधान चाहते हैं। मैं तो बस इतने से ही पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ कि मैंने पप्पू को और उसके परिवेश को आपके लिए जीवन्त बना दिया है।

बाहर घास के किनारे लगाए गए नये पौधे के पास मम्मी खडी हैं । उदास और चुपचाप। अपने मे ही खोई हुई-सी। जैसे जो कुछ अपनी आँखो से देख रही हैं उसके द्वारा अपने भीतर एक समूचे इतिहास को दुबारा जी लेना चाहती हो ।

वैसे तो सब कुछ उनके देखते-देखते घटित हुआ था । क्रमश एक के बाद एक । और मम्मी न अपनी समूची ताकत से उस रोकने की लगातार चेष्टा की थी । लेकिन इसके बावजूद मम्मी उसे न तो बदल सकी थी और न उसे अपने ढग से घटित होते हुए देख सकी ।

बल्कि उनकी इच्छाओ के ठीक विपरीत उन्ह निरतर तोडते हुए सब कुछ घटित हुआ था । और वे कुछ भी नही कर पाइ ।

ऐसे समय जब व्यक्ति चाहता कुछ और ही है और उसके सामने घटित कुछ और ही होता है तो सिवाय निराश होने के वह कर ही क्या सकता है ?

हमारे जीवन मे जाने कितनी आकाक्षाए रोजाना टूटती-खण्डित होती रहती है।

इन आकाक्षाओ का टूटना कोई इतनी बडी बात नही बन पाता कि उसे बहुत ज्यादा तूल दिया जाए । क्योकि यदि ऐसा किया जाने लगे तो व्यक्ति को न जाने कितनी बार टूटना पडे । एकसाथ या बार-बार ।

इसलिए कई बार ऐसा होता है कि छोटी सी आकाक्षा की विफलता महसूस तो होती है पर केवल कुछ क्षणा क लिए ही ।

निश्चल जल मे जसे ककर फेंकने पर एक क्षण को जल टूट जाता है। उसमे हलचल मच जाती है । और फेंके गए ककर को केन्द्र बनाकर

एक पर एक अनेक दायरे बनने लगते हैं, जो केन्द्र से धीरे धीरे दूर हटते चले जाते हैं। परिधि के फैलने के साथ ही उनकी चंचलता क्षीण से क्षीणतर होती जाती है। और लहरें जो उठती हैं वे पुनः जल में इतनी घुलमिल जाती हैं कि एक बिन्दु पर आकर उनका अस्तित्व ही खत्म हो जाता है। उसके स्थान पर एक बार फिर से जल में अटूट चुप्पी छा जाती है। कम्पन खत्म होकर सवत्र स्थिरता पुनः व्याप जाती है।

जल जुड़ जाता है और क्षणो के बाद यह पता भी नहीं चलता कि अभी कुछ देर पहले वहाँ पर एक कंकर फेंका गया था। कि उस कंकर ने अपनी समूची ताकत से जल की जड़ता को तोड़ा था। कि शान्त स्थिर दिखलाई पड़ने वाली जल की यह सतह अभी-अभी हिल डुल रही थी। कि स्थिर हो जाने के बाद भी इस जल में पहले वाली स्थिति से यह फर्क है कि पहले इसमें कोई कंकर नहीं था लेकिन अब इसमें वह मौजूद है। शायद पानी के साफ होने पर वह इसमें देखा भी जा सकता है।

आकांक्षाओं के टूटने पर भी ऐसा ही तो होता है। तब भी सतह के भीतर के तार कुछ समय तक झंकृत हो जाते हैं। आघात से हृदय के तार झनझना उठते हैं और तब उनसे उठने वाले कम्पन को थाम पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। जब तक यह झनझनाहट रहती है तब तक चेतना की सारी प्रतीतियाँ उसी को लेकर उन्मथित होती रहती हैं।

अन्दर जैसे सब कुछ खदबदाता रहता है।

लेकिन थोड़ी देर के बाद सब कुछ रुककर पुनः शान्त और स्थिर हो जाता है। वीणा के खिंचे हुए तार मानो ढीले पड़कर सुस्ताने लगते हैं। कम्पन पूरी तरह थमकर मानो दूसरे आघात की प्रतीक्षा करने लगता है।

मम्मी के साथ आज ऐसा ही तो हुआ था। जरा सी तो बात थी। लेकिन उसने उसे मधुमक्खी के डंक की तरह चुभकर हल्की सी टीस पैदा कर दी थी। कुछ समय तक के लिए उसने जैसे सब कुछ अपने भीतर लील लिया था। उतनी देर तक जो कुछ भी घटित हुआ वह मानो उस बात को लेकर ही था।

कितने अरमानों से मम्मी ने यह पौधा लगाया था। यदि यह पनप जाता और बड़ा होकर मीठे मीठे फल देने लगता तो शायद मम्मी का

मनचीता हो जाता पर वह सपना पूरा नही हुआ।

वैसे तो मम्मी के ज्यादातर काम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही नहीं होते हैं। उनमे दूसरों को दिखलाने की आदत इतनी अधिक है कि वह उनका शौक ही बन गया है। वे जो भी कार्य करती है उसके उपयोगी पक्ष पर विचार करती है या नहीं पहले कार्य के उस पहलू पर अवश्य गौर करती है कि मेरे इस कार्य से दूसरो पर, खासकर दूसरी औरतो पर, कितना असर पड़ेगा। वे लोग मम्मी की इस नवीन उपलब्धि से प्रभावित होगी या नही इस बात पर जरूर विचार करती है।

मम्मी की इस आदत के कारण मैंने शुरू से ही देखा है कि कई बार उनके लिए वस्तुएँ इतना महत्त्व नही रखती हैं जितना कि उनका खरीदा जाना। उनकी इसी आदत के कारण घर मे न जाने कितनी चीजें इकट्ठी हो गई हैं जो या तो काम मे ही नही आ रही हैं या फिर जिनके होने का महत्त्व हमारी दैनिक आवश्यकताओं को लेकर नही है। बल्कि वे चीजें दरअसल किसी न किसी पड़ोसन को नीचा दिखलाने के लिए ही घर मे आई है।

आम का यह छोटा सा पौधा भी मम्मी की प्रदर्शनप्रियता की इसी आदत का ही परिणाम था।

मम्मी को बागवानी का शौक कतई नही है। पूजा के समय तुलसी की पत्तियां तोड़ने मे या मिल जाए तो एकाध फूल बीनने मे ही उनकी बागबानी का शौक पूरा हो जाता है। क्योंकि उन्हे पाने के लिए मम्मी जब उस छोटे से बगीचे मे जाती है तो बागवानी के अपने शौक को समग्रत पूरा कर आती है।

मम्मी को दरअसल उसी समय घर के बगीचे का खयाल आता है। बगीचे मे जाने के बाद किसी पौधे की एकाध सूखी पत्ती को तोड़कर या किसी पौधे में एकाध बार खुरपी चलाकर बागवानी के सारे दायित्वों से मम्मी मानो मुक्त हो जाती हैं।

नियमित रूप से पेड़ पौधों की देखभाल करना, उन्हे खाद देना, पानी देना, कीड़ो आदि से बचाए रखने के लिए उचित दवाई आदि की व्यवस्था करना, खुरपी देना, मौसम आने पर उनकी कलमे लगाना आदि

काय करने की न तो मम्मी मे लगन है, न अभिरुचि और न उतना धैय ही।

ज्यादा से ज्यादा वे इतना कर देती हैं कि जब भी वे बगीचे म जाती हैं तब नल खोलकर पौधो मे पानी छोड देती हैं और फिर भीतर आकर अपने काय म व्यस्त हो जाती है। फिर उन्हे याद ही नही रहता है कि बाहर वे पानी खुला छोड आई हैं। और पानी सभी पौधो म न जाकर एक ही पौधे म भरा जा रहा है। या फालतू ही बहा जा रहा है। पौधो मे पानी उनकी जरूरत के मुताबिक है या कही ज्यादा हो गया है।

बाद म जब मेरी या पापा की निगाह उधर चली जाती है तो हम लोग ही जाकर नल को बन्द करते हैं। तब तक पौधो म पानी लबालब भरकर बाहर फल जाता है। दूब म इतना पानी हो जाता है कि उसम कुर्सी रखकर बैठ सकना तो दूर चल सकना भी मुश्किल हो जाता है। वह कीचड की तरह गदली गदली हो जाती है। उसम चलते समय पैर कीचड म धँसते हुए स महसूस होते हैं और सूखी हुई घास व खाद के छोटे छोटे टुकडो स पर टखनो तक भर जाते हैं।

कीचड सने परो स घर म जाने पर मम्मी की डाँट भी खानी पडती है। तब वे इस मानने के लिए बिल्कुल तैयार नही होती कि उन गन्दे पैरो के लिए वस्तुत व स्वय उत्तरदायी हैं। तब तो उन्हे वे गन्दे पर दिखलाई देते है और दिखलाई देता है घर का फश जिस पर वे निशान पडकर सारी सफाई को मटियामेट कर रहे होते है।

लेकिन आम के इस पौधे को लेकर मम्मी मे इतना उत्साह आ गया था कि इसके कारण उन्होने अपनी सारी लापरवाही को पूरी तरह ताक पर धर दिया था।

कुछ दिनो तक मौसी के पास रहकर लौटने के बाद से ही अपने बगीचे में भी आम का पेड लगाने की धुन मम्मी को लग गई थी।

मौसी क अपने आम के कई बगीचे हैं। उनको देखकर मम्मी इतना अभिभूत हो गइ थी कि अपने यहाँ भी वैसा ही परिवेश देखन को लाला यित हो उठी।

उनके मन म यह अभिलाषा दृढता से घर कर गई कि हमारे बगीचे

मे भी आम का पौधा हो जो बडा होकर मीठे मीठे फल दे। फलित आम की कल्पना मात्र से उनके मुख पर वह भाव उतर आता या मानो अभी-अभी उन्होने उसकी मधुरता का आस्वादन किया हो।

उस दिन से ही आम का पौधा उनकी सबसे बडी कामना बन गया था। पापा के आफिस का कोई चपरासी किसी काम से आता तो मम्मी उससे आम के पौधे की चर्चा करती। आस पडोस के लोगो से उसका जिक्र करती। यहाँ तक कि मिलने के लिए आए हुए मेहमानो के साथ भी व आम के पौध की ही चर्चा करती। सभी को प्रेरित करती कि वे उनके लिए कष्ट उठाकर आम का पौधा ले आवें।

लोग मम्मी के सामने तो हाँ हूँ कर देत। उनके उत्साह के भागीदार बनकर वसी ही बातें करत। बढा चढाकर आम के नस्लो की चर्चा करत। दूसरो के बगीचो मे लग हुए पडो का उल्लख करते। कोई-कोई पुराने रईसो राजा-महाराजाओ अग्रजो के आम्र प्रेम की सुनी सुनाई हुई या मनघडन्त कहानिया सुना देत।

यो मम्मी के सामने बातो ही बातो म आम के बादशाहत की घोषणा हो जाती। उसकी सभी नस्लो की विशेषताओ का मूल्याकन हो जाता। उसक निर्यात स विदेशी मुद्रा अर्जित करो की जाने कितनी ही बातें वहाँ पर हो जाती। लेकिन वहा से उठते ही व लोग सब कुछ भूल भाल जाते थे।

ऐस अवसरो पर जब लोग आम्र चर्चा म सक्रिय सहयोग देते थे, मम्मी का उत्साह देखते ही बनता था। उनके लिए ये बातें इतनी मूल्यवान बन गइ थी कि एक बार ऐसी चर्चा छिड जाने पर वे उन्ही को लगातार दोहराती जाती। उतनी देर तक जब तक कि बोलते-बोलते वे पूरी तरह थक न जाती।

उत्साह के अतिरिक्त उन्ह इसका तनिक भी भान नही रहता कि लोगों की ये बातें यथाथ से नितान्त परे हैं। लोग तो सिर्फ उनक उत्साह का फायदा उठाकर उनके हितैषी बन जाना चाहत हैं। ठकुरसुहाती कहकर उनके मन म अपने लिए सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर लेना चाहते हैं।

पापा अनेक बार मम्मी को टोकते भी थे कि एक छोटी सी बात के लिए यों उत्साहित होकर मूढ़ बनना ठीक नहीं है। लेकिन मम्मी थी कि अपनी ही रौ में बही जा रही थी और उसके सम्बन्ध में कुछ भी सुनने के लिए तयार नहीं थी।

इस पर कभी कभी मम्मी-पापा के बीच हल्की सी बहस भी हो जाती। कभी पापा बुरी तरह से उन्हें डांट देते तो कभी नाराज होकर मम्मी दूसरों के सामने ही पापा को झिड़क देती। ऐसे क्षणों में यदि मैं बीच में बोल देता तो वे तुरन्त ही मुझे पीट देती थीं।

इसके बावजूद मम्मी की इस अभिरुचि को पापा ने एक मजाक समझा था। एक आह्लादकारी मजाक। उसे गंभीरता से न लेकर पापा ने उसे बड़ी सहजता में लिया था। एक-दो बार मेहमानों के सामने पापा ने मम्मी की इस बात का मजाक भी उड़ाया था।

मम्मी ने तब न केवल अपना असन्तोष ही प्रकट किया वरन् वे उनसे नाराज भी हो गई थीं। हारकर पापा ने इस विषय में दखल देना बन्द कर दिया।

इसके बाद मम्मी जब भी आम के प्रसंग को छेड़ती पापा एक गहरी चुप्पी साध लेते। अखबार पढ़ने लगते या किसी बहाने से वहाँ से उठ कर दूसरे कमरे में चले जाते पापा का यह रुख मम्मी के लिए धीरे धीरे एक चुनौती बन गया। वे और भी अधिक जोश से अपनी अभिलाषा को पूरा करने के लिए जुट पड़ी। एक प्रकार से जिद की सीमा तक उनका उत्साह जा पहुंचा था।

जाने कितनी कोशिशों के बाद अन्ततोगत्वा मम्मी ने आम का यह पौधा मंगवा ही लिया।

उस दिन मम्मी का उत्साह सातवें आसमान पर जा पहुंचा था। जब विलास अंकल के माली ने वह पौधा बगीचे के कोने में रोप दिया तो मम्मी ने खुश होकर उसे पाँच रुपये ईनाम के रूप में दे डाले। उसके सौंदर्य को देख देखकर मम्मी रीझ उठी।

पौधे की हरी हरी कोमल कोमल एवं चिकनी चिकनी पत्तियाँ उसकी जीवनी शक्ति का उद्घोष कर रही थीं। हवा के झोंको में जब

वे पत्तिया हल्के हल्के हिलती तो अपनी शोभा आप ही बन जाती थी।

उस दिन से मम्मी के सारे कार्यों में जसे एक उपसग आ जुटा था। पौधे के सरक्षण की सारी बागडार मम्मी ने अपने हाथ म ले ली थी। हर घडी व उसके आस पास मँडराती रहती। कभी उसके चारो ओर मिट्टी की पाल बनाती। कभी पानी देती। तो कभी खाद। और कुछ नहीं तो उसकी पत्तियो की मिट्टी को ही साडी के पल्लू स साफ करने लगती। उस पर लगे हुए मकडी के जाले दूर करने लगती।

यद्यपि घर का फाटक कभी खुला नही रहता था और बगीचे को नुकसान पहुचाने कोई पशु भीतर नही आ पाता था फिर भी यदा कदा भूल स खुला रह जाने पर मोहल्ले के आवारा गाय बकरी चुपके से भीतर घुस आत थे और इससे पूव कि मैं या पापा लपककर उनको बाहर निकालते व हरी हरी दूब पर एकाध बार मुह मार ही देते थे। मम्मी न इस बात को कभी गभीरता से नही लिया था।

कि तु इस पौधे क आ जाने के बाद उन्होने हर तरह की आशकाओ का पूर्वानुमान कर लिया था। इसलिए खास तौर से ऐसी स्थिति से बचाव के लिए पौधे के चारो ओर बबूल की काटेदार टहनिया गाड दी गई थी।

पानी देते समय कहीं जल की तज धार जाकर पौधे की जडो का नुकसान न पहुचा दे इसके लिए उसकी पाल के सहारे एक चपटे पत्थर क टुकडे को स्थायी रूप से रख दिया गया। नल से पानी देत समय पाइप के दूसरे सिरे को उस पत्थर पर छोड दिया जाता। पानी उस पत्थर स टकराकर चारो ओर बिखर जाता। यो पौधे की जडो पर पानी की धार का प्रत्यक्ष असर नही पड पाता।

पौधे क सवधन के लिए तरह-तरह की खाद इकट्ठी की गई। देशी और रासायनिक खाद का एक छोटा-सा भण्डार ही घर मे जमा हो गया। और पौधे की जरूरत का ख्याल किए बिना ही मम्मी समय-बे-समय उसम खाद डालती रहती। पौधे की सेहत की ओर देखे बिना ही कभी वे गोबर की खाद डालती तो कभी यूरिया खाद तो कभी बकरी की मीगणी।

कुल मिलाकर पौधा मम्मी की सारी आकांक्षाओं का प्रतीक बन गया था। भविष्य की न जाने कितनी उज्ज्वल कल्पनाएँ धुंधली होकर उस पौधे के रूप में दिखलाई दे रही थीं। जैसे किसी स्वप्न भविष्य को साकार करते हुए उभर आए हों। उनका अधिक समय अब सभी अवकाश ही पौधे के पास बिताया जाने लगा।

उनका सारा खाली समय तो अनिवार्यतः पौधे के पास ही बीतता। कई बार वे हाथ के काम को भी बीच में ही छोड़कर पौधे के पास पहुँच जातीं। इतना तक कि कमरे में झाड़ू-पोंछा बीच में ही छोड़कर वे बाहर हो लीं या सीते हुए कपड़े को बीच में ही छोड़कर वे बाहर चली जातीं।

मैं उनकी इस नयी आदत का मज़ाक कई बार उनका मज़ाक उड़ाता था। मम्मी भी उस मज़ाक में मुस्कराकर हँस देतीं। लेकिन अगले ही क्षण वे उस पौधे के पास मौजूद होतीं।

पापा कभी मेरी तरह उनका मज़ाक उड़ाते तो कभी गंभीरता से अनेक तर्क प्रस्तुत करते हुए उन्हें निरुत्साहित करने की चेष्टा करते।

उस समय मम्मी या तो चुप रहतीं, या पापा पर प्रत्यारोप लगाने लगतीं या फिर बचाव का कोई उपाय न पाकर भावावेश में रोने लग जातीं। पापा के लिए तब हथियार डाल देने के अलावा और कोई उपाय शेष नहीं रह पाता।

यह बात नहीं कि मम्मी इससे अनभिज्ञ थीं कि आम का पौधा एक-दो महीनों या कुछ ही वर्षों में बड़ा होकर फल देने लायक नहीं बन जाता।

वे इसे अच्छी तरह जानती थीं कि पूरे बारह वर्षों के बाद कहीं जाकर आम का पौधा बढ़कर फल देने योग्य होता है। वे यह भी जानती थीं कि बारह वर्षों के बाद पौधे के लिए घर का यह परिवेश शायद अनुपयुक्त रहेगा। वे यह भी समझती थीं कि तब शायद बगीचे का यह कोना पौधे के लिए अपर्याप्त रहे। वे यह भी अच्छी तरह जानती थीं कि इन सब बाधाओं के बावजूद यदि यह पौधा बढ़कर पेड़ बन भी गया तो मोहल्ले के आवारा छोकरों के रहते इससे उन्हें फल मिल नहीं सकेंगे। लेकिन इन सब बातों को वे जान-बूझकर नकार रही थीं।

कल के अनागत सकटो को मम्मी अनावश्यक समझकर वतमान से ही अपने का झुठलाए बैठी थी। वे तो बस अपनी हर सभव चेष्टाओ स यह चाहती थी कि किसी तरह यह पौधा एक बार जडें पकड़ ले और अपने पैरो पर खडा होने की सामर्थ्य हासिल कर ले। इतना आत्मनिभर हो जाय कि फिर उवर पृथ्वी से अपने लिए पोषक तत्त्वो को स्वय ही बाहर खीच लाए।

मम्मी का पौधे से यह जुडाव और उसको लेकर उनमें प्रकट होने वाला उनका यह उत्साह अपन अतिरेक के कारण हमारे पारिवारिक जीवनक्रम को बुरी तरह प्रभावित कर रहा था। नाश्ते के समय मम्मी प्राय पौधे के पास होती जिससे हमे नाश्ता समय पर नही मिल पाता या मात्रा म वह अपर्याप्त होता। सुबह का खाना समय पर नही बन पाता और या तो मेरी बस छूट जाती या पापा के दफ्तर की देरी हो जाती। इसका परिणाम मम्मी पापा की झडपो बहसो आरोपो प्रत्यारोपो के रूप मे सामन आता या मम्मी के हाथो मेरी पिटाई के रूप मे।

कभी पापा भी अपनी खीज मिटाने के लिए मुझ पर ही अपना गुस्सा निकाल लेते। तब मेरी फटी किताब को लेकर, अभ्यास पुस्तिकाओ म की गई काट छाट को लेकर, बस्ते की ग दी हालत को लेकर, गहकाय के अधूरेपन को लेकर, जुराबो की ग दगी को लेकर, जूतो की पॉलिश को लेकर, टिफिन की सफाई को लेकर या ऐसे ही किसी कारण से मुझे डाट देते या गुस्से मे आकर मुझे एकाध झापड भी लगा देते।

मुझे रोता देखकर मम्मी ऐसे अवसरो पर किसी प्रकार की सहानुभूति प्रदर्शित करने की अपेक्षा झुझलाकर मुझे और पीट देती। पापा से पुन लड पडती या अपने म ही बडबडाने लगती।

इस पर भी उनकी वह आदत नही बदली थी। इन सब अवरोधो से भी उनका यह नवीन जीवन क्रम एकदम अप्रभावित रहा। शा त होते ही वे पुन पौधे के पास पहुच जाती जैसे अनेक विरोधो के बावजूद वे जिस मिशन पर चल पडी थी उसे पूरा करना ही उनके जीवन का तात्कालिक लक्ष्य बन गया था।

वही पौधा आज पूरी तरह सूख गया था।

उसकी वे हरी भरी मसृण पत्तियाँ सूखकर नीचे लटक गई थीं। खाद पानी और भरपूर सरक्षण के रहते हुए भी उसका पतला तना एक सूखी डण्डी की तरह गड़ा हुआ दृष्टिगत हो रहा था। उसकी सुदरता समूची नष्ट होकर श्रीहीन हो गई थी।

उसी सूखे पौधे के पास मम्मी उदास भाव से खड़ी हैं। एक छोटे से पौधे का सूख जाना कोई बहुत बड़ी बात नही है। इससे पूर्व भी बगीचे मे न जाने कितने पौधे सूखकर अकाल काल कवलित हो चुके थे।

किन्तु वे पौधे पौधे ही रह गए थे। उससे ऊपर उठकर मम्मी की आशाओं आकाक्षाओ के प्रतिरूप नही बन पाए थे।

यह पौधा औरो से इस रूप मे विशिष्ट था कि यह मात्र पौधा ही बना न रहकर मम्मी के लिए बहुत कुछ महत्त्व की वस्तु बन गया था। इस पौधे का सूख जाना एक साधारण सी बात न होकर उन आकाक्षाओं का सूख जाना बन गया था जिन्हें पौधे के माध्यम से मम्मी ने अपने भीतर पाला था।

इसलिए मम्मी आज अपने को टूटा हुआ महसूस कर रही थी।

वे तमाम बातें जो मम्मी ने सोची थी गलत साबित हुई थी और जो पापा कह रहे थे वे सच बन गई थी। हार-जीत की यह बात ऊपर से साधारण दृष्टिगत होते हुए भी असाधारण है मैं इसे पूरी तरह महसूस कर रहा हूँ।

मम्मी की चेष्टाओ के कारण कुछ समय तक वह पौधा मुस्कराता रहा। उसकी उस मुस्कान मे जीवन का सगीत तरगायित होता हुआ दृष्टिगत हुआ। फिर न जाने क्या हुआ कि पौधा सुस्त सा पड़ने लगा। पत्तियो की हरीतिमा अपनी ताजगी खोने लगी। उनकी मसृणता दूर होकर कुम्हलाने लगी। मुरझाई हुई पत्तियां अपनी चेतना खोकर जमीन के समानान्तर खड़ी न रह पाइं और नीचे की ओर लटक गई। फिर पत्तियो का अग्रभाग सूखने लगा। कुछ दिनो बाद पत्तियो का आगे वाला वह नुकीला भाग पूरी तरह सूखकर काला पड गया।

मम्मी ने लाख चेष्टाएं की थी कि किसी तरह पौधा बच जाए लेकिन उनकी कामनाओ को तोडते हुए पत्तियां धीरे-धीरे सूखती गइं

सूखती ही गई।

पत्तियों के बाद बारी आई डण्ठल की। वह भी धीरे धीरे ऊपर से सूखने लगा। उसकी जीवनी शक्ति निचोड़ ली गई-सी प्रतीत होने लगी।

ऐसा क्या हुआ? कोई न जान सका। यद्यपि पौधे के लिए न पानी की कमी थी न खाद की न धूप की न संरक्षण की और न देखरेख की ही। उसके जिन्दा रहने के लिए सारे अवसर मौजूद थे फिर भी वह सूख गया।

मम्मी उस घटित इतिहास की शुरू से आखिर तक भागीदार रही थी। इस पर भी आज वे उस पौधे के पास खड़ी होकर कालखण्ड के गुजरे हुए उन क्षणों को मानो दुबारा अपने में अनुभव सा कर रही थी।

एक समाप्त अध्याय को नये सिरे से अवलोकित कर रही थी।

इसी समय कहीं जाने के लिए तैयार होकर पापा बाहर निकले। उन्हें तेजी से जाता हुआ देखकर यकायक मम्मी की तन्द्रा टूटी और उन्हें पुकारते हुए मम्मी ने कहा— 'सुनना जी! जरा इधर तो आना।'

पापा के तेजी से बढ़ते हुए कदम एकाएक रुक गए। हड़बड़ाहट का भाव फिर भी उनके चेहरे पर अंकित रहा। दूर से ही देखते हुए पापा ने 'क्या माजरा है?' इसे जानना चाहा। मम्मी को पौधे के पास खड़ी देखकर ही वे समझ गए कि वस्तुतः बात क्या है? फिर भी धीरे से निकट आकर बोले— 'क्यों? क्या बात हो गई?"

"जरा इस पौधे को देखना जी। यह तो सूख रहा है।" धीमी सी आवाज में मम्मी बोली।

पापा ने मम्मी के सन्तोष के लिए उस मुर्दा पौधे को हाथ से छूकर देखा फिर जवाब दिया— 'यह तो सूख गया बिलकुल ही।"

'यही तो मैं भी कह रही हूँ।" मम्मी ने कहा और अपने में दुबारा खो गई।

पापा ने हल्के से कंधे उचकाकर पहले तो अपनी खीज प्रकट की "कि जब जानती हो तो फिर मुझे बुलाकर दिखलाने की क्या जरूरत थी?' फिर मम्मी को कुछ और न बोलते देखकर केवल बात कहने

के लिए बोले—"मैं तो पहले से ही कह रहा था। लेकिन तब तो तुम्हीं सुनी अनसुनी कर रही थी।" फिर तनिक गम्भीर होकर दार्शनिक अन्दाज में कहा

'बात दरअसल यह है कि हर पौधे की अपनी एक निजी जीवन-पद्धति होती है। अपना एक निजी परिवेश होता है। उसके बिना वह पनप नहीं पाता लेकिन तुम हो कि बात को समझना ही नहीं चाहतीं।"

एस क्या कह रहे हो जी ?" मम्मी ने तनिक पीड़ा भरे शब्दों में कहा जैसे कहना चाहती हों कि मैं तो पहले ही बहुत दुःखी हूँ। ऊपर से ऐसी कड़वी बातें कहकर आप मुझे और दुःखी क्यों कर रहे हो ?

फिर अपने इसी मनोभाव को शब्दों में प्रकट करते हुए बोलीं—'आप तो हर समय मेरे कामों में मीनमेख निकालते रहते हैं। यह भी नहीं देखते कि मेरी क्या हालत है ? ये दूसरे पौधे भी तो खड़े ही हैं। इनको कौन से परिवेश की जरूरत नहीं रहती ? ये तो नहीं सूखते ?'

'जरूरत से ज्यादा ध्यान देने के कारण ही पौधा सूख जाता है।" पापा ने जोर देते हुए कहा।

'आप भी गजब करते हैं ? ध्यान देने से पौधे पनपते हैं कि सूखते हैं ? दुनिया भर में लोग मूर्ख थोड़े ही हैं जो बागवानी का शौक पालते हैं। माली रखते हैं। वे भी आखिर करते क्या हैं ? देख-भाल ही तो करते हैं पौधों की ?"

'लेकिन वे तुम्हारी तरह यों बावले नहीं हो जाते ? शौक में और सनक में फर्क होता है। तुम अपनी सनक को शौक के मुकाबले रखना चाहती हो।'

इसमें बावलेपन की क्या बात है ? एक पौधा ही तो लगाया था ? क्या पौधा लगाना सनकीपन है ? इसके अलावा और क्या किया है मैंने ?'

'यह सनकीपन नहीं है तो और क्या है ? बेचारा हर घड़ी पानी से लबालब भरा रहता। जरूरत न होती तब भी उसे खाद दी जा रही है। जब मन में आया खुरपी दी जा रही है। कभी कपड़े से पत्तियाँ साफ की जा रही हैं। कभी फ़ारे से उस पर फुहारें डाली जा रही हैं।

यो कोई आम के पेड लगते होगे ?" पापा अब अपनी आदत के अनुरूप व्यग्य वचनो पर उतर आए थे।

'नही तो, गुठली को जमीन मे बोकर भूल जाने से लग जाते है ?" मम्मी ने तनिक रुष्ट होते हुए से जवाब दिया।

"अब तुमसे क्या कह ? यही तो आदत है तुम्हारी। बात को समझती तो हो नही। समझान पर बुरा और मान जाती हो। अपनी अक्ल से काम लेती नही और दूसरो की अक्ल पर रत्ती भर भी भरोसा नही करती। मैं तो यह कह रहा था कि हर चीज की अपनी एक प्रक्रिया हुआ करती है। अपना तरीका होता है। हर पेड का अपना मौसम होता है। अपना जलवायु होता है। अपनी जमीन होती है। अपना ही जल, खाद आदि होते हैं। उनमे फेर बदल होते ही सब कुछ गडबडा जाता है। छोटे बच्चे को जस जितना दूध चाहिए वह उतना ही ले पाता है। उससे अधिक होते ही वह या तो उल्टी कर देता है या फिर दस्त। तुम जो कुछ भी कर रही थी वह इस शिशु पौधे के लिए ओवर डोज की तरह थी। यदि तुम अपने पर थोडा सा भी सयम रखती तो शायद यह प्रतिकूल परिवेश म भी जि दा रह जाता। लेकिन तुम तो अपने ही उत्साह मे अ धी बनी हुई थी। किसी के रोके रुक नही रही थी। फिर बेचारे इस पौधे का क्या कसूर है? मैं तो पहले से ही जानता था कि यही कुछ होने वाला है। तब तुम मेरी बात मान लेती तो शायद यह पौधा बच जाता। लेकिन अब क्या किया जा सकता है ?' यो एक लम्बा भाषण देकर पापा न हाथ झटक दिए।

मम्मी का मूड अब उखडने लगा था। पराजित हो जाने का ताजा ताजा घाव अभी तक उनक भीतर मौजूद था जिसम स गम खून-सी पीडा अभी तक रिस रही थी। पौधे के सूख जाने की कचोटमयी अनुभूति अभी तक एकदम जि दा थी। ऊपर स पापा सहानुभूति दिखलान या दु ख प्रकट करन की जगह छिद्रा वेषण के द्वारा उन्ह और भी अधिक चोट पहुचा रह थे।

अच्छा तो यह रहता कि पापा अपनी बात का सत्य सिद्ध करने के लिए तक ढूढने की जगह सहिष्णुतापूवक मम्मी के ताजा घावा की

रिसती पीडा को मुलायम हाथो से सहला देते।

पर पापा की ऐसी आदत ही नहीं है। वे तो अपनी बात से एक इंच भी आगे बढने के लिए तैयार नहीं होते। उल्टे स्थिति का जायजा लिए बिना अपनी बात को प्रमाणित करने में जुट जाते हैं। ऐसे अवसरो पर उनका तरीका प्राय अक्खडपन से भरा रहता है और बातें ऐसी चुभती हुई होती हैं कि दूसरे के घाव को कुरेदकर गहरा कर देने का काम ही करती है। लुहार की तरह पापा भी लोहे को गर्म होते देखते ही घन चला देने में विश्वास करते हैं।

अभी-अभी पौधे के लिए अवसर प्रक्रिया परिवेश आदि की दुहाई देने वाले पापा भूल ही रहे थे कि पौधों की ही भाँति मनुष्य के जीवन में भी हर अवसर का अपना मिजाज होता है और होती है अपनी कालोचित व्यवहारपद्धति। सभी समय, सभी बातों में एक-सी अक्खडता से काम नहीं चलाया जा सकता। समय की नाजुकता को देखकर व्यवहार में भी तदनुरूप लचीलापन लाया जाना चाहिए। पर पापा इन बातों का कभी ख्याल ही नहीं करते।

पापा का आज का व्यवहार भी सदा की तरह का व्यवहार ही था। अपने दम्भ को प्रकट करता हुआ। मम्मी के आचरण को निकम्मा सिद्ध करता हुआ। उनका यह लम्बा भाषण भी यद्यपि सच्चाई पर आधारित था लेकिन कालोचित हरगिज नहीं था। इसी कारण मम्मी को बुरा लग रहा था।

मुझे भी अजीब लगा। पापा क्या ऐसे समय अपनी बात को अंतिम देखने का मोह छोड नहीं सकते? केवल गलत कह देने से क्या मम्मी की अनुभूतियाँ पीडा मुक्त हो जायेंगी? क्या मम्मी को इतना भी अधिकार नहीं है कि वे अपनी मनोभिलाषा को अपने ढंग से प्रकट होता हुआ देख सकें?

मैंने स्पष्ट देखा कि मम्मी की खीज बढती ही जा रही थी जो किसी भी क्षण क्रोध में परिणत हो सकती थी। या उसी बिंदु पर द्रवित होकर आँसुओं का स्वरूप ग्रहण कर सकती थी।

मम्मी पापा के झगडे में मुझे पापा का पक्ष सदैव अधिक समीचीन

और तक मगत लगता रहा है। क्योंकि मुझे लगता रहा है कि मम्मी वातो की तह मे जाने की अपेक्षा उनको सदव भावावश म ग्रहण करती हैं। इसलिए अधिकतर वे तस्वीर का मात्र एक ही पहलू देख पाती है।

जबकि पापा की वाते उतनी एकागी नही हाती, कम से कम मम्मी की अपेक्षा अधिक निष्पक्ष मूल्याकन करते हुए सामने आती है। उनकी बातो म तस्वीर कुछ इस कदर साफ रहती है कि उनका औचित्य स्वय सिद्ध हो जाता है।

इस पर भी एक वात जरूर है कि पापा का बात कहन का ढग कुछ इस कदर तीखा हुआ करता है कि श्रोता पर वात अपना प्रभाव कम डालती है उसे झकझोरती अधिक है। इसलिए पापा के कुछ भी बोलने का मतलब होता है झगडे की पृष्ठभूमि तयार करना। फरस के सुतीक्ष्ण आघातो स पापा मानो युद्ध के अनिवाय अवरोधक द्वारो को तोड देते है। इसलिए उनकी बातें सटीक होकर भी प्राय बे असर रहती है या लडाई को आमत्रित करने स अधिक कुछ नही कर पाती।

यह पापा की आदत ही बन गई है। मम्मी के सामने ही नही अपने दोस्तो के सामने भी इसी तरह बोलकर व अपना रौब जमाना पसन्द करते है। इसलिए पापा की बातें बनती सॅवरती कम हैं विगडती अधिक हैं।

ऐसे म मुझे पापा का समथक होने हुए भी विरोधी बन जाना पडता है। या गलत पक्ष पर होते हुए भी मैं मम्मी का समथक बन जाता हूँ और पापा की बातो स अक्षरश सहमत होत हुए भी मैं उनका विरोध करने के लिए विवश हो जाता हूँ।

आज भी एसा ही तो हुआ था। पौधे के सूखने का सही कारण कृषि वैज्ञानिक ही बता सकते हैं। इस बात पर न मम्मी की दृष्टि सही कही जा सकती है न पापा की। क्योकि दोनो ही कृषि पडित नही है और कोरे अनुमान से ही अपनी बात कह रहे हैं। लेकिन इतना सही है कि अन्य कारणो के अलावा मम्मी का अतिरिक्त उत्साह भी वह कारण अवश्य रहा होगा जिसन उस बेचारे पौधे पर अतिरिक्त बोझ लादकर उस अपनी ऊर्जा से अपने लिए जीवनी शक्ति आप अर्जित करने से वचित

कर दिया था।

क्या जरूरी था कि रात दिन सब कुछ भूलकर सिर्फ उसी के पीछे पागल हुआ जाता? क्या इतना श्रम खर्च किए बिना वह अपने-आप बढ़ नहीं पाता?

जंगल में जो इतने पेड़ उगते हैं उन्हें कौन देखता भालता है? फिर भी क्या वे पनपते नहीं हैं? क्या उन पर वैसे ही मीठे मीठे फल नहीं लगते जितने लोगों के द्वारा लगाए गए बगीचों के पेड़ों पर लगते हैं?

निस्सन्देह पेड़ों की आत्म निर्भरता उन्हें मनुष्यों से भिन्नता दिला देती है जिनके बच्चे एक लम्बी अवधि तक अपने माता पिता पर निर्भर रहा करते हैं। इसलिए एक पौधे के लिए इतना उत्साहित हो जाना क्या ठीक है? मम्मी की ये सारी चेष्टाएँ प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती।

इस मामले में मैं स्वयं पापा के साथ ही था। मम्मी की ऐसी सनक के समय हम दोनों अनायास ही एक ओर हो जाते हैं। मम्मी की अनुपस्थिति में पापा के साथ मैंने जाने कितनी ही बार उनकी ऐसी ही बातों को लेकर आनन्द के क्षणों को बाटा भी है।

कई बार मम्मी के सामने ही इशारों इशारों में हम लोग उनकी ऐसी बातों का मजाक उड़ाया करते हैं। प्राय मम्मी उनकी सांकेतिकता को समझ ही नहीं पाती। या समझते हुए भी उन्हें अनदेखा कर जाती हैं। और जब वे हल्के मूड में होती हैं तो स्वयं भी उस हास परिहास में सम्मिलित होकर अपने पर ही हँसने लगती हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि मम्मी पहले से ही नाराज होती हैं तब हमारे इस मजाक को देखकर उनका क्रोध और भी बढ़ जाता है। वे मुझे पीट देती हैं या पापा से लड़ पड़ती हैं या नाराज होकर दूसरे कमरे में चली जाती हैं।

पापा की आज की बातें भी मुझे ठीक ही लग रही थीं किन्तु उनके कहने के ढंग से और अवसर की नाजुकता को अनदेखा कर देने के कारण ये ही बातें मुझे बुरी लगीं। बरबस ही मम्मी से मुझे सहानुभूति हो आई।

स्थिति चाहे जो कुछ रही हो मम्मी ने मन प्राण एक करके उस

पौधे की देखभाल की थी। उसका रूप चाहे जैसा रहा हो इतना सुनिश्चित है कि बात दिखने मे चाहे जितनी साधारण ही क्यो न हो वह मम्मी के लिए इस समय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलाषाओं का प्रतीक थी।

इसलिए मेरी समझ में पौधे के सूख जाने पर मम्मी की पीड़ा का बाँटा जाना चाहिए था। और पापा है कि जले पर नमक छिड़कते जा रहे हैं।

मैं सोच रहा था कि अब मम्मी रो पड़ेंगी। या फिर भीतर ही भीतर कोई बात खोजकर पापा पर पुनराक्रमण कर उठेंगी। लेकिन ऐसा कुछ भी नही हुआ।

मैंने महसूस किया कि अपनी आदत के सर्वथा प्रतिकूल मम्मी का सख्त पड़ता चेहरा यकायक पुन नरम और करुणायित हो गया। दुःख की बारीक सी धूमिल परत, जो कोहरे-सी उनके चेहरे पर छाई हुई थी, छँट गई और उसके स्थान पर उत्साह की नूतन आभा प्रकट होकर उन्हे उत्फुल्ल करने लगी।

मानो निराशा के गहन अंधकार की दीर्घ व्याप्ति के बाद उषाकाल मे प्रकाश का क्षीण आभास मिलने लगा हो।

गर्द से आकण्ठ आवृत मजदूर जैसे कार्य समाप्ति पर सब कुछ झाड़ झूड़कर ताजगी अनुभव करने लगता है वैसे ही एक क्षण मे मम्मी ने अपनी समूची निराशा को दूर कर दिया और बिलकुल सहज होते हुए पापा से पूछा —

'सुनो जी! अब भी कुछ किया नही जा सकता क्या ? आप कोशिश करके देखो ना शायद जी ही जाय यह पौधा।'

मेरे जीवन का यह पहला अनुभव था जब मैं मम्मी को इतनी तेजी मे सहज होते हुए देख रहा था। वरना इस छोटी सी उम्र मे ही मैंने मम्मी पापा के तनाव के क्षणो मे उनकी आगामी प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान कर लेना सीख लिया है। क्योंकि तनाव के क्षणो मे दोनो के आचरण सदैव सुनिश्चित रहते हैं। मम्मी का रूठना, गुस्से होना रोना या मुझे पीटना जबकि पापा का चीखना, कड़वी बातें करना, डाँटना या

खीझकर बहिर्गमन कर जाना।

इन्हीं बातों के अभ्यास के कारण मैं पहले से ही समझ लेता हूँ कि आज की लड़ाई में मम्मी रूठेंगी या गुस्से होंगी, पापा चीखेंगे या बाहर चले जायेंगे।

इसलिए मम्मी का यह त्वरित भाव-परिवर्तन मेरे लिए एकदम नया अनुभव है। मैं विस्मित सा मम्मी की तरफ देखकर बात को समझने का प्रयास करता हूँ।

मेरे ही भाँति पापा भी हक्के-बक्के रह गए थे। क्योंकि वे तो ईंट के जवाब में सदैव पत्थर पाने के अभ्यस्त रहे हैं। स्वयं कटु बातें कहकर पापा जवाब में मम्मी से भी कटु वाक्य पाने की ही अपेक्षाएँ करते रहे हैं।

आज मम्मी को यों समझौता करता देखकर एकबारगी तो उनसे भी कोई जवाब देते नहीं बना। बल्कि यों कहा जा सकता है कि उनके लिए तनाव मुक्त होकर इतनी तेजी से सहज हो पाना अत्यन्त कठिन हो रहा था। इसलिए मम्मी की बात का मर्म जानने के लिए पापा कुछ क्षणों तक अपने में ही खोए खड़े रहे।

इस पर अपने में ही खोई हुई मम्मी ने दुबारा पूछा—

'आप यों चुप क्यों हैं? बताइये ना क्या इस पौधे का अब कुछ नहीं किया जा सकता? सुनते हैं पेड़ पौधों में तो कोई डाल काट देने पर नई डाल आ जाती है। कोशिश करके इसे भी किसी तरह जिलाया नहीं जा सकता क्या?'

इतनी देर बाद पापा कहीं सहज हो पाए थे। तब पहली बार मम्मी की पीड़ा की सही अनुभूति करते हुए पापा ने उन्हें तोष देने के लिए मुलायम स्वरों में कहा—

"अब इस पौधे का क्या हो सकता है? तुम समझने की चेष्टा क्यों नहीं करतीं? यह तो सूख गया है। अब इसमें प्राण फूंक सकना सम्भव नहीं है।'

'नहीं आप कोशिश करके तो देखो' मम्मी ने स्त्रीजनोचित हठ को बातों से प्रकट करते हुए कहा—"कृषि विभाग के शर्माजी को तो

आप अच्छी तरह जानते हैं। उनके यहाँ तो पौधों की जाने कितनी नर्सरियां हैं। वे तो सब तरह के प्रयोग करते रहते हैं। एक छोटे से पौधे के लिए वे क्या कुछ भी नहीं कर पायेंगे ? आप उनसे मिलेंगे तो वे जरूर कोई न कोई राह खोज निकालेंगे।"

'देखो अनु ! मुझे नहीं लगता कि अब इस पौधे को दुबारा जीवित किया जा सकता है। फिर भी तुम चाहती हो तो मैं आज शर्माजी को फोन कर दूंगा। वे किसी आदमी को भेज देंगे। उसे तुम सब बता देना। कुछ हो सकेगा तो ठीक नहीं तो इतनी सी बात के लिए यों परेशान होना तुम्हें शोभा नहीं देता। न हो तो उसी आदमी से कह देना। वह दूसरा पौधा रोप जाएगा। क्यों ठीक है न ?'

मम्मी कुछ आश्वस्त हुई। पापा ने लाड़ से उनका कंधा थपथपाया और अपने काम से चले गए।

मम्मी अभिभूत सी पीछे से उन्हें जाते हुए देखती रहीं। पापा जब दृष्टि से ओझल हो गए तब उन्होंने एक बार पुनः उस पौधे की ओर देखा। उसे देखते हुए वे अपने में ही खोई हुई सी कुछ देर तक वहीं खड़ी रहीं। फिर एक दीर्घ निःश्वास लेकर जैसे उस वेदना को उन्होंने दूर कर देना चाहा जो इतनी देर से उनके मन में घर किए हुए थी।

मुझे मालूम है कि बाहर से शान्त हो जाने पर भी मम्मी के मन के भीतर अभी तक बहुत कुछ यथावत विद्यमान है। आकांक्षाओं के टूटने का अहसास। पीड़ा का उद्वेलित साम्राज्य। पराजय की हताशा। दुःख का उफनता ज्वार। तथा ऐसी तरह का कुछ और भी।

मुझसे मम्मी का दुःख अब और नहीं देखा गया।

इस घटना में मैं लगातार एक दर्शक के रूप में ही खड़ा रहा था लेकिन ऐसी तटस्थता में अब मैं अपने को और नहीं रख पाया।

मम्मी का ध्यान उस पौधे से हटाने के लिए मैंने कहा— मम्मी, मुझे भूख लगी है। जल्दी से नाश्ता दो ना मुझे।"

और पास जाकर मैंने उनका हाथ पकड़ लिया। उन्हें खींचते हुए मैं भीतर ले आया। मम्मी मेरे पीछे-पीछे खिंची आती गई। जैसे इस घटना ने उनकी समूची चेतना को अपहृत कर लिया हो, वे सम्मोहित सी

उदभ्रान्त सी अभी तक उसी पौधे से बँधी हुई हो। और सम्मोहन टूट जाने के बाद भी जैसे व उसके अवश जडताकारक प्रभाव से अभी तक मुक्त न हो पाई हो।



स्कूल की छुट्टी होने पर एक बोझिल अनमनेपन से भरा हुआ मैं धीरे धीरे चलकर बस में जा बैठा।

आज का सारा दिन मेरे लिए ऐसी ही ऊबाऊ नीरसता से भरा रहा। न तो मैं अपने-आपसे किञ्चित मात्र भी बाहर निकल सका और न बाहर के प्रकाश की ताजी धूप के साथ भीतर भरने के लिए सचेष्ट ही हो सका। सारा दिन ऐसी ही नीरस अतमुग्धता मुझे घेरे रही।

दरअसल बात यह थी कि आज सुबह पापा से मैंने अपनी बस छुड़ाने के लिए एक बार पुन प्रार्थना की थी। मैं बस में बुरी तरह ऊब गया था और चाहता था कि स्कूल के लिए मैं पैदल ही आया जाया करूँ। वस्तुत पिछले कई दिनों से मैं यह बात कह रहा था। लेकिन पापा उस पर बिल्कुल ध्यान नहीं दे रहे थे।

आज सुबह ही सुबह जब मैंने इस बात के लिए जिद की तो पापा का मूड उखड़ गया। नाराज होकर पापा ने मुझे डाँट दिया और मेरी इच्छा के विरुद्ध ले जाकर मुझे बस में चढा दिया।

यह पहला अवसर नहीं था कि मुझे मेरी अभिलाषाओं के लिए सम्मानित कर पुरस्कृत करने की जगह मुझे यों दण्डित किया गया हो। हमेशा ऐसा ही तो होता रहा है मेरे साथ।

होता यह है कि अपने उत्साह में भरकर मैं जब भी कोई इच्छा प्रकट करता हूँ मम्मी पापा द्वारा सदैव निर्दयतापूर्वक अस्वीकार दिया जाता हूँ। या फिर उन लोगों के द्वारा मेरा मजाक उड़ाया जाता है। कभी कभी मूर्ख कहकर मेरी भर्त्सना भी की जाती है। यों मेरी अभिलाषाओं को पूरा करने की जगह उनकी अनिवार्य अवहेलना की जाती है।

मम्मी पापा के लिए मेरी इच्छाओं का कुछ भी मूल्य नहीं होता है। अत्यन्त साधारण करके देखते हैं वे उन्हें। जबकि वास्तविकता यह होती है कि मेरे लिए ये छोटी छोटी बातें ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बातें हुआ करती हैं। इस दृष्टिभेद के कारण हमेशा मुझे ही झुकना पड़ता है। मेरे उत्साह को बर्बर चेष्टाओं से कुचल दिया जाता है। मेरी अनुभूतियों को कुचल दिया जाता है जबकि उनकी अभिरुचियों को मुझ पर सदैव बलात लाद दिया जाता है।

आज भी उसी की पुनरावृत्ति से मेरा मन टूट सा गया। उसी की निराशा मुख पर दिन भर छाई रही। उसी की पीड़ा को मैं दिन-भर महसूस किए रहा। इसी कारण किसी भी काम में मन नहीं लगा मेरा। बहिन जी ने क्या क्या पढ़ाया उसकी तरफ भी मेरा ध्यान नहीं गया। अपमान की अनुभूति इतनी गहरी थी कि स्कूल में खाना भी न खाया गया मुझसे। बस, एक दो कौर लेकर ही मैंने टिफिन को बस्ते में वापस रख दिया।

खेल के घण्टे में भी खेलने की इच्छा नहीं हुई। सुस्त सा कक्षा में ही चुपचाप बैठा रहा जैसे संज्ञाहीन हो गया होऊँ पूरी तरह। रह-रहकर दिमाग में सुबह वाली बात आती रही और मैं अपने आपमें ही पीड़ित होता रहा।

छुट्टी होने पर वैसे ही मरे हुए मन से बस्ता उठाकर मैं चुपचाप आकर बस में बैठ गया।

वरना मुझमें तो क्या छुट्टी की घण्टी बजते ही सभी बच्चों में इतना उत्साह भर जाता है कि सभी शीघ्र ही अपना बस्ता उठाकर भाग पड़ते हैं। बहिन जी की बात पूरी हुई या नहीं इसकी भी परवाह नहीं रहती। सभी लोग एक अपूर्व उल्लास से भर जाते हैं। एक अननुभूत आनन्द में भीगते हुए बाहर भाग खड़े होते हैं।

पैदल आने वाले बच्चे तो बस्ता लिए हुए फाटक से बाहर तक भागते चले जाते हैं। एक दूसरे को पीछे छोड़ देने की होड़ में तब तक दौड़ते रहते हैं जब तक कि पूरी तरह थक नहीं जाते। उस समय तो उन्हें कंधे पर लटका हुआ बस्ता भी भारी नहीं लगता। सबको बस, एक ही धुन

रहती है कि दूसरो को पीछे ही पीछे छोडकर सबसे पहले अपने घर पहुच जायें।

हम लोग जो बस मे आते जाते है, कक्षाओ से भागकर सीधे बस की ओर लपकते हैं। हमारे लिए दूसरो को पीछे छोड देना उतना महत्वपूर्ण नही होता है जितना कि खिडकी के पास वाली जगह रोक लेना। क्योंकि खिडकी के पास बैठकर बाहर देखते रहने से समय इतनी आसानी से कट जाता है कि उसका पता ही नही चलता। खिडकी के पास जगह नहीं मिलने पर वही समय पहाड जैसा भारी हो जाता है। क्योंकि तब बाहर कुछ भी दिखाई नही देता है या इतना कम दिखाई देता है कि वह न दिखने जैसा ही होता है।

तब तो बस बहिन जी के पढाने के ढग को लेकर बातें करते हुए या उनकी नकलें उतारते हुए या बडी बहिन जी के चश्मे को लेकर खिल-खिलाते हुए या इसी तरह की बेमतलब हरकतें करते हुए समय बिताना पडता है। लेकिन इन सब बातो मे वह आनन्द कहाँ मिलता है जो खिडकी के पास बैठने पर मिला करता है।

खिडकी के पास बैठकर ही समीप से गुजरने वाली सवारियो वाहनो को देखना, सजी हुई दुकानो की सजावट का लुफ्त लेना, फुटपाथ पर खडे होकर व्यवसाय करने वालो की कलाबाजियाँ देखना सम्भव होता है।

किसी लडके को उतारने के लिए बस जब रुकती है तो हम समीप से गुजरने वाले लोगो की खोपडी का निशाना बनाकर इसी काम के लिए स्कूल मे इकट्ठा किए गए चाको के टुकडे फेंकने लगते हैं। उनकी हल्की चोटो से व्यक्ति समझ ही नही पाता कि माजरा क्या है ? या जब तक बात उसकी समझ मे आती है तब तक हमारी बस रवाना हो चुकी होती है।

नितिन तो इतना बदमाश है कि वह किसी गरीब किस्म के आदमी को खिडकी के पास से जाता देखकर उस पर थूक दिया करता था। स्कूल मे शिकायत होने पर एक दिन जब प्रार्थना के बाद सबके सामने उसकी पिटाई हुई तब कही जाकर उसने वह गन्दी आदत छोडी।

इस पर भी शैतानी करने से वह बाज नही आता है। होली के दिनो मे एक बार तो उसने चलती बस मे से हाथ बढाकर एक गाँव वाले

आदमी की पगडी का ही नीचे गिरा दिया था। इस नये खेल को देख कर हम सभी जोरो से हँस पडे थे। पीछे से उस गाव वाले की गालियाँ हमे दूर तक सुनाई देती रही।

वर्षा के दिनो म जब हल्की हल्की फुहारें गिर रही होती ह तब हम नये-नये खेल शुरू कर देते हैं। कभी उन फुहारो को हाथो म झेलने की चेष्टा करते है तो कभी अपन रूमालो को झण्डो की तरह लहराने लगत है। इस खेल म हम बुरी तरह भीग जाते हैं लेकिन हममे अधिक से अधिक बूदो को हथलियो पर ले लेने की होड लगी रहती ह। वर्षा जब तेज हो जाती है तो हम सिर बाहर निकालकर जीभ पर बूदें झेलने की कोशिश करने लगत हैं।

इस पर भी हमारा आनन्द पदल आन जाने वालो के मुकाबले बहुत कम ह। शुरू-शुरू मे बस मे बैठकर आना जाना अपने-आप म एक गौरव की बात थी इसलिए उसका मजा हम ज्यादा से ज्यादा लूटते थे।

स्कूल म बेचारे हमारे बच्चे जब पैदल चलकर आते तब हम उनके सामन बडी शान स बस मे से उतरते थे। कई बार ऐसा भी होता था कि हमारी बस कुछ लेट हो जाती तो बडी बहिन जी उन पैदल आने वालो को कक्षाओ म भेज देती। न तो उनकी पढाई होती और न वे खेल ही पाते थे। बेचारो को नौकरो की तरह उपेक्षित होकर हम साहब लोगो के आने का इन्तजार करना पडता था।

हम अनुभव करते थे कि वे लोग बस को बडी ललचाई नजरो से देख रहे है। उसमे एक बार के लिए भी बैठ सकने को वे तरसते रहते हैं।

किन्तु, ये सभी बातें शुरू शुरू मे ही अच्छी लगती थी। अब न जाने क्या वैसा कुछ भी अनुभव नही होता। क्योकि इतनी सुख सुविधाओ के बावजूद बस की यात्रा अत्यन्त कष्टप्रद नीरस और ऊबाऊ होती है। रोजाना स्कूल जाने से पहले और छुट्टी के बाद अनिवार्य रूप से हमे सडको पर फालतू भटकना पडता है।

गर्मियो म सुबह-सुबह उठकर बस स्टेण्ड पर खडे होकर उसका इन्तजार करना होता है। सर्दियो मे यदि दूसरे ट्रिप मे नम्बर आता है तो घर पहुचते-पहुँचते शाम ढल जाती है और हमे खेलने तक का मौका नही

मिल पाता है। जब कि पैदल घर जाने वाले बच्चे हमसे बहुत पहले घर पहुंचकर खेल रहे होते हैं। उन्हें यों मस्ती करते देखकर मन में न जाने कैसी रिक्तता अनुभव होने लगती है।

कभी बस खराब हो जाती है तो बस स्टैण्ड पर या स्कूल में भूखे प्यासे बैठे रहकर मूर्खों की तरह एक फालतू प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब सर्दियों में ठिठुरते हुए खुले में खड़े रहना पड़ता है। गर्मियों में उमस, घुटन और चिपचिपाते पसीने की गन्ध से भरी बस की नीरस यात्रा पूरी कर जब हम घर पहुंचते हैं तब तक लोग दुपहरी की सुखद नींद पूरी कर उठ चुकते हैं।

पैदल आने वालों का सबसे बड़ा सुख इस बात में है कि फुटपाथ का रोमांच उसका अतिपरिचित सत्य है। जब कि हमारे लिए वह केवल हसरत भरी निगाह बनकर रह जाता है।

फुटपाथ पर कभी मदारी डुगडुगी बजाते हुए बन्दरिया को दुलहिन बनकर दिखलाने को कहता तो वह चुनरी से घूंघट निकालकर सचमुच दुल्हन बन जाती है। बन्दर तब उसके पीछे पीछे ठुमक-ठुमककर चलने लगता है जिसे देखकर सभी खिलखिला पड़ते हैं।

फिर आती है भालू की बारी। वह पहलवान बनकर मदारी से दो दो हाथ करके सचमुच भिड़ पड़ता है। दोनों जब गुत्थम गुत्था हो जाते हैं तो भालू जोर जोर से खू खू करने लगता है। उसकी उस भयानक आवाज को सुनकर सभी लोग सहम जाते हैं। अविनाश का छोटा भाई तो एक दिन डरकर सचमुच रो ही पड़ा था।

जमूरे का खेल अलग से बहुत मजेदार होता है। सड़क पर काला कपड़ा ओढ़े हुए जमूरा जाने कैसे सारी बातें सच्ची सच्ची बतला दिया करता है, इसे हम लाख चेष्टा करके भी समझ नहीं पाते। बड़ी कक्षा के लड़के कहते हैं कि यह पहले से ही सब कुछ रट रटाकर आता है। लेकिन मेरी समझ में यह कभी नहीं आया कि जमूरा यह कैसे पता कर लेता है कि किसकी जेब में पैसे हैं या किस आदमी की नाक पर चश्मा है या कौन आदमी साइकिल लिए हुए है।

उससे भी ज्यादा मजा तो साधु बाबा की गाय के खेल में आया

करता है। जमूरा तो चलो आदमी होता है लेकिन गाय को भला कैसे समझाया जा सकता है? लेकिन वह भी घर के अन्दर घूमते घूमते अचानक एक आदमी के पास रुक जाती है और जब छानबीन की जाती है तो साधु बाबा के प्रश्न का सही उत्तर मिल जाता है। विनय कह रहा था कि एक दिन तो बड़ा मजा आया। साधु बाबा ने गाय से कहा कि बताओ इन सबमें से कौन-सा आदमी अपनी बीवी से मार खाता है? गाय घेरे के भीतर घूमती रही घूमती रही आखिर एक एक मरियल से अधेड़ आदमी के पास जाकर रुक गई जिसके गाल पिचके हुए और कान उठे हुए थे। फिर तो लोगों ने वो ठहाका लगाया कि बेचारा खिसियाकर रह गया था। बुरी तरह झेंपकर वह वहाँ से निकल भागा।

फुटपाथ पर ज्योतिषियों के भी मजमे जमे रहते हैं। ये लोग भविष्य बतलाने वाले कागजों के ढेर सारे लिफाफे सामने फैलाए रहते हैं और एक पिंजरे में छोटी-सी चिड़िया बन्द रखा करते हैं। जब कोई व्यक्ति अपना भविष्य जानना चाहता है तो ज्योतिषी उससे पैसे लेकर पिंजरे की खिड़की खोल देता है। पालतू चिड़िया फुदकते हुए बाहर आती है। अपनी चोंच से पकड़कर कोई लिफाफा ज्योतिषी को दे देती है और पिंजरे में वापस चली जाती है। लिफाफे में से कागज निकालकर ज्योतिषी ग्राहक का भविष्य सुना देता है।

जादूगर लोग भी फुटपाथ पर अक्सर दिखलाई दे जाते हैं। ये लोग ताश और रूमाल के कई अजीब अजीब तमाशे दिखलाते हैं। इसके अलावा कागज को रुपया बना देने के या रुपये को कागज बना देने के ऐसे मजेदार खेल दिखलाते हैं कि वहाँ से हटने की इच्छा ही नहीं होती।

एकबार एक जादूगर ने सरकारी स्कूल के एक लड़के के साथ ऐसा मजाक किया था कि बेचारा रोने ही लगा था। जादूगर ने कहा, "मैं बिना पैसा खर्च किए आप लोगों को मनमर्जी की मिठाई खिला सकता हूँ। जो कोई मिठाई खाना चाहता हो मेरे पास आ जाए।" हेकड़ी-हेकड़ी में वह लड़का जादूगर के पास चला गया। जादूगर के पूछने पर वह रसगुल्ले की फरमाइश कर बैठा। जादूगर ने उसकी दोनों हथेलियों को आपस में जोड़कर उन्हें रूमाल से ढक दिया और कुछ बोलता हुआ अपने डण्डे को

उस पर घुमाने लगा। थोडी देर बाद उसने रूमाल हटा लिया और लडके से कहा 'तुम अपने हाथ खोल लो और तुम्हें रसगुल्ला मिल जाएगा।' लेकिन हमने सबने देखा कि लडके के दोनों हाथ आपस में चिपक गए थे। लडके ने उन्हें छुडाने की लाख चेष्टा की लेकिन सफल न हो सका। सभी लोग हंसकर उसे चिढाने लगे और खाओ बच्चू! रसगुल्ले। बेचारा रोने लगा। लोगों ने सिफारिश की तब कहीं जाकर जादूगर ने उसके हाथ छुडाए थे।

फुटपाथ पर कई तरह के मंजन और सुरमा बेचने वाले लोग भी खडे रहते हैं। वे मुफ्त में मंजन दातुन करने को देते हैं या आंखों में सुरमा डाल दिया करते हैं। एक बार हमारे स्कूल के एक लडके ने मूर्खता करते हुए सुरमा आंखों में डलवा लिया था। उसकी आखें जलने लगी और लाल हो गई। कई दिनों तक इलाज करवाने पर कहीं जाकर उसकी आंख ठीक हो पाई थी।

सँपेरे का खेल भी मजेदार होता है। लेकिन उसमें डर भी तो खूब लगता है। मोटे मोटे लम्बे सांप को गले में माला की तरह डाले हुए सँपेरा खडा खडा बीन बजाता रहता है। सामने केसरिया रंग के कपडों की पोटली से ढकी टोकरी में काला सांप फन फैलाए बीन की आवाज के साथ साथ झूमता रहता है। बीच बीच में फुफकार मारकर गुस्से में ऐसी चोट करता है कि हम सभी सहम जाते हैं। एक बार ऐसा भी हुआ कि टोकरी का ढक्कन थोडा खुला रह गया था और एक सांप धीरे धीरे सरकता हुआ बाहर आ गया और हमारी ओर आने लगा। डरकर हम सभी जोर से चीख पडे तब कहीं सँपेरे का ध्यान उस ओर गया और उसने उसे पकडकर वापस टोकरी में डाल दिया।

फुटपाथ पर इसी तरह साबुन बेचने वाले, सिगरेटों का विज्ञापन करने वाले लोग भी जोकर बनकर कई तरह के खेल तमाशे दिखलाते रहते हैं। वे लोग छपे हुए रंग बिरंगे पर्चे बांटते हैं। बच्चों को गोलियाँ आदि दिया करते हैं। सिनेमा का विज्ञापन करने वाले तो बच्चों को देखते ही पर्चियाँ हवा में उछाल देते हैं। उनको लूटने का अपना निराला ही मजा रहता है। लेकिन बस में बैठे हुए हम लोग उन कागजों को पाने

वे दिखलाने रहते हैं।

[illegible] के पीछे बने हुए छोटे-से पार्क की भी अपनी विशिष्ट शोभा है। [illegible] बीच एक छोटा सा फव्वारा है। उसमें [illegible] पानी [illegible] में अत्यन्त रमणीय लगती है। [illegible] पानी को बिना [illegible] हुए [illegible] जब बन्द होता तब मानो स्थिर [illegible] [illegible] झूलते हुए देखने में [illegible] तरह तेजी से [illegible] हैं मानो उनके [illegible] गई हो।

[illegible] ऊपर पौधों पर मँडराती तितलियों की [illegible] बना हुआ है। तितली का पीछा करते हुए [illegible] फिर भी [illegible] कोई [illegible] होता है।

[illegible] कभी-कभी सात-आठ [illegible] के लिए [illegible] [illegible] अपना [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] हैं कि [illegible]

[illegible]

गया है। पार्क में घुसते ही लपककर झूलों पर चढ़ जाना और लम्बी लम्बी पेंगे भरना कौन बच्चा नहीं चाहता। इसी तरह कसरत करने वाले डण्डे पर उल्टा लटक जाना, सीढ़ियों पर हाथों से पकड़कर चढ़ना या फिसलनी पर तेजी से भागकर उल्टी दिशा से चढ़ना आदि सभी खेल खेले जा सकते हैं।

हम लोग जो बसों में घर लौटते हैं, और बस एक-एक बच्चे को घर पर छोड़ने के लिए जब सड़कों पर फालतू चक्कर लगा रही होती है तब पैदल आने वाले बच्चे इन सबमें से किसी-न-किसी सुख को लूट रहे होते हैं। यह बात नहीं है कि हम लोग फुटपाथ की या पार्कों की इन लुभावनी बातों को देख न पाते लेकिन इतनी तेजी से और इतने कम समय के लिए उन्हें देख पाते हैं कि तेजी से घूमती रील की भांति दृश्य भी तेजी से बदलते रहते हैं और हम उनकी एक झलक-भर ही देख पाते हैं।

मेरी सदैव यह इच्छा रहती है कि मैं बस से न जाकर स्कूल पैदल आया-जाया करूँ। कोई बहुत दूर थोड़े ही है स्कूल हमारे घर से। पन्द्रह-बीस मिनटों में तो चींटी की चाल से चलकर स्कूल पहुँचा जा सकता है। लेकिन मम्मी-पापा को मेरा पैदल जाना स्वीकार्य नहीं है।

जिन फुटपाथों पर हमारे लिए ये सभी आकर्षण विद्यमान रहते हैं उनके आगे ही सड़क पर हर समय ट्रैफिक इतना सघन और इतना असंतुलित रहता है कि उन्हें पार करना आसान नहीं होता है। बसें ट्रकें मोटरें आदि तो खतरनाक ढंग से तेजी से आते जाते ही हैं। तांगे, ठेले, साइकिलें आदि भी बेतहाशा भागती रहती हैं। इसलिए सड़क को पार करना मुश्किल ही नहीं खतरनाक भी होता है। स्कूल जाते समय मुझे तीन स्थानों पर इन सड़कों को पार करना पड़ता है।

मम्मी इतनी डरपोक है कि वे यह मानने को तैयार ही नहीं होतीं कि इतना बड़ा होकर भी मैं अपने आप सड़क पार कर सकता हूँ। उन्हें लगता है मैं दोनों तरफ देखे बिना ही एकदम भागकर सड़क पार करूँगा और दुर्घटनाग्रस्त हो जाऊँगा। मैं कोई बिलकुल बच्चा तो हूँ नहीं कि पहली-दूसरी में पढ़ता होऊँ और सड़क पार करना नहीं आता होऊँ। मैं कभी आसानी से सड़क पार कर सकता हूँ।

मम्मी वैसे तो बडी चतुर और होशियार बनती हैं पर इतना-सा भी नही जानती कि यातायात के नियम और सडक पर चलने के सिद्धान्तो का पाठ तो मैं तीसरी कक्षा मे ही पढ चुका था। मम्मी खुद ही तो परीक्षा के समय वे नियम मुझे रटाया करती थी। और खुद ही भूल गई।

किताबें क्या सिर्फ इसलिए होती हैं कि उन्हे रट-रटकर परीक्षा पास कर ली जाय? मम्मी डाँट पीटकर तब किताब म लिखी गई बातो के अनुसार मुझे सडक के बायी ओर चलना दोनो ओर देखकर सडक पार करना आदि सिखलाती थी पर खुद ही भूल गइ कि उन नियमो को सीख कर अब मैं उन्ह प्रयोग मे भी ला सकता हूँ।

मम्मी मे यही तो खराब आदत है। मुझे, बस, बिलकुल बच्चा ही समझती हैं। मुझ पर कभी विश्वास नही करती।

हमारे स्कूल के ही जाने कितने बच्चे रोजाना उस सडक को पार करते हैं। क्या उनके माता-पिता नही हैं? क्या उनके लिए सडक पर ट्रैफिक नही है? लेकिन यदि ऐसा मम्मी से कह दो तो झापड तैयार रहता है या एक तीखी चुभती डाँट तो जरूर ही खानी पडती है।

ये भी क्या तुक हुई कि मुह से बस न चले तो भले ही हाथा स काम ले लो लेकिन बच्चे पर अपने आपको थोपे जरूर रहो। बच्चा जो चाहता है उसकी ओर मत देखो। बस, अपनी इच्छाआ को उस पर लादत जाओ। पीटकर, पुचकारकर, डाँटकर, फुसलाकर याने साम दाम दण्ड भेद स बच्चे को वश मे किए रखो।

दूसरो की तरह पैदल ही स्कूल जाना और पैदल ही मटरगश्ती करत हुए घर लौटना मेरी सबसे बडी अभिलाषा रही है। पर मम्मी हैं कि उसको पूरा होने का अवसर ही नही देती। मैं भी लेकिन सदैव मौके की ताक मे रहता हू। जब वे खुश होती हैं तब अपने भोलेपन स उनके दरबार म फिर प्रार्थना करता हू।

ये अवसर ऐसे नही होते हैं कि मम्मी यकायक गुस्से हो सकें। लेकिन तब उनके पास दूसरे तर्क मौजूद रहत हैं।

मुझे भय दिखलाते हुए कहती हैं "फुटपाथो पर ज्यादातर चोर-

उचक्के खडे रहते है। वे लोग किसी अकेले बच्चे को देखते ही डरा-फुसलाकर उसे उडा ले जाते हैं। फिर उसके हाथ पाव तोडकर उससे दूसरे शहरो मे भीख मगवाते हैं।"

कभी कहती हैं "जादूगर इसीलिए तो खडे रहते हैं फुटपाथो पर कि चुपके से किसी बच्चे को कबूतर या बकरी बना लें और अपने साथ ले जावें।'

सबसे ज्यादा तो मम्मी साधुओ का डर दिखलाती हैं कि "वे लोग बच्चे को बेहोश कर देते हैं और अपने झोला मे भरकर ले जाते हैं। पार्कों मे भी लोग ताक म बठे रहत हैं। किसी बच्चे को दखते ही गोली आदि का लाभ देकर भगा ले जात हैं।'

ऐस समय मम्मी प्राय कोई न कोई घटना जरूर सुना दती हैं कि कैस एक साधु ने एक बच्चे को चुरा लिया था या कैस कुछ गुण्डे एक बच्चे को बेहोश करके ले जाते हुए पुलिस के द्वारा पकडे गए थे।

उन डरावनी बातो को सुनकर मैं भीतर ही भीतर सिहर जाता हूँ। यद्यपि ऊपर स लापरवाही दिखाते हुए बातो को सुनता हूँ फिर भी अपने भीतर भय की अनुभूति भी महसूस करता रहता हूँ। कई बार तो मैं इतना डर जाता हूँ कि मुझ पदल जाने मे खतरे ही खतरे दिखलाई देने लगते हैं।

इन्ही बातो स शायद साधुओ आदि का स्थायी भय मेरे मन मे बठ गया है। मैं जब भी किसी साधु को मुहल्ले मे देखता हूँ तो भागकर घर पर आ जाता हूँ। मुझे सबस अधिक डर तो भरोजी क गण को देखकर लगता है जो काले कपडे पहने रखता है। हाथ मे त्रिशूल रखता है और कमर म बडे-बडे घुघरू बाधे रखता है। वह कभी स्थिर होकर शात खडा नही रहता। हर समय हिलता जुलता रहता है। इसलिए उसके घुघरू भयानक ढग से आवाज करत रहत हैं। सिदूर से भरा हुआ उसका त्रिशूल तो इतना भयानक लगता है कि उस देखने तक की हिम्मत नहीं होती है।

मम्मी की ऐसी ही खौफनाक बातो को सुन सुनकर अक्सर मुझे रात मे डरावने सपने भी आ जाते हैं।

मैं देखता हूँ कि किसी साधु ने स्कूल से मुझे अकेला आता देखकर मेरा पीछा करना चालू कर दिया है। मैं बुरी तरह घबरा गया हूँ और बचाव का कोई उपाय न पाकर भागने लगा हूँ। मेरी सास फूल गई है। दिल तेजी से धडक रहा है और मेरे हाथ पाव ठण्डे ही ठण्ड पडते जा रहे हैं। जल्दी घर पहुचने की फिक्र मे मैं सडक का लम्बा रास्ता छोड-कर पार्क म स होकर भाग जाना चाहता हूँ। यही मैं गलती कर देता हूँ क्योंकि पार्क म इस समय कोई नही है। साधु को पार्क मे सुनसान होने का लाभ मिलता है। मैं देखता हू कि वह लपककर मेरे पास आ गया है। उसने जोर स मेरा हाथ पकड लिया है और जाने क्या सुघाने के लिए वह अपना रुमाल मेरे मुह पर लगाना चाहता है। भय के अति-रेक से मेरी चीख निकल जाती है।

इसी समय मेरी आखें खुल जाती है तब मुझे मालूम होता है कि मैं वस्तुत सपना देख रहा था। मेरा सारा शरीर पसीने स लथपथ हो जाता है। हृदय की धडकनें सचमुच बढी हुई होती हैं और मैं अपने मे घबराहट का भाव भी मौजूद पाता हूँ। अपने को नियन्त्रण करने की भरसक चेष्टा करके भी मैं अपने रोमाच को रोक नही पाता।

चीख सुनकर मम्मी पापा भी जाग जाते हैं। मम्मी बडे लाड म मेरे सिर पर हाथ फेरने लगती है। तौलिये से मेरा पसीना पोछती है और दोनो हथेलियो के बीच म मेरे मुह को फसाकर प्यार से पुचकारते हुए पापा से कहती, 'सपना देख रहा था आपका राजा बेटा। देखा बिलकुल डर गया है।' फिर पता लगने पर कहती है 'अरे! इसने तो बिस्तर भी गीला कर दिया है।"

तब मुझे ज्ञात होता है कि घबराहट म मैंने विस्तर मे ही पेशाब कर दिया है। मैं केवल पसीने से ही भीगा हुआ नही वरन पेशाब मे भी मेरे कपडे भीग रहे है।

मम्मी दूसरे कपडे लेकर आती हैं और लाड दिखलाते हुए कहती हैं, "बहादुर बनो बेटा! सपनो स भी कही डरा जाता है। यो घबराने लगोगे तो फिर जिन्दगी मे काम कैसे चलेगा? सोचो तो तुम यदि ऐसी छोटी छोटी बातो से घबराओगे तो लोग तुम्हे डरा धमकाकर तुमसे

कुछ भी काम करवा लेंगे। तुम्हारी तरह यदि लोग यो सपनो से ही डरते रह तो दुनिया मे लोग जो ये साहसपूर्वक काम करते हैं वे ऐसा कैसे कर पाते ? इसलिए हिम्मत से काम लेना चाहिए, कभी किसी से डरना नहीं चाहिए।' कई बार मम्मी जोर देकर मुझसे जबरदस्ती 'हाँ' भी भरवा लेती हैं कि "मैं डरूँगा नही। वीर बच्चा बनूगा।" ऐसे अवसरो पर मैं गरदन हिलाकर उनकी बातो से सहमति तो जतला देता हूँ पर भीतर ही भीतर मुझमे डर अवश्य बना रहता है।

कैसी अजीब बात है ? दिन मे खुद ही तो डराती हैं फिर रात म उस डर से सपना आ जाता है तो कहती हैं, "डरो मत। वीर बच्चे बनो।" साधु बाबा का डर कौन बतलाता है ? मेरी गलती हो तो कोई बात भी हो। मैं कौन-सा साधु बाबा से डर रहा था। तब तो खुद ने ही ऐसी डरावनी बातें कही थी। अब अगर स्वप्न मे मैंने वही सब कुछ देख लिया तो क्या मैं डरूँगा नही ? अभी अगर यही बात सच्ची-सच्ची कह दू तो ये सारे लाड प्यार एक क्षण मे ही समाप्त हो जायेंगे और चट से पीटने लगेंगी। तब कहेगी, "जबान निकालना सीख गया है ! यही सीखा है ? बड़े लोगो की बातो म कही मीनमेख निकालते है ?'

इसलिए मैं अपने डर की बात को किसी के समक्ष साफ-साफ कह नही पाता। मन मे लेकिन डर किसी भी तरह कम नही होता।

यह भी सच ही है कि इन्हीं बातो का रोमाच कुछ ऐसा होता है कि अब मुझे अधेरे म सदैव डर लगता रहता है। शाम होते ही मैं घर मे दुबक जाता हूँ। प्रकाश के दायरे से बाहर नही जाता। स्नानघर म मुझे तो सबसे अधिक डर लगता है। पेशाब आने पर जल्दी से पेशाब कर वापस भाग आता हू। यदि इसी बीच कोई आहट पाता हूँ तो बीच म ही उठ आता हूँ लेकिन भय के कारण वहाँ ज्यादा देर टिक नही पाता। कभी बिजली चली जाती है तो मम्मी पापा के समीप रहने पर भी मैं डरता रहता हूँ और मम्मी को विवश कर देता हूँ कि वे लालटेन या मोमबत्ती जलाकर प्रकाश कर दें।

ऐसे समय भूतो का भय मुझे सबसे अधिक सताता है। मुझे लगता है कि अँधेरा होते ही भूत घर मे घुस आया है और घर के कोनो मे

छुपा बैठा है। मुझे अकेला देखते ही वह मुझ पर झपट पड़ेगा। इसलिए ज्यादातर मम्मी से चिपका रहता हूँ। वे अपने काम से रसोई-घर, स्टोर और कमरो मे आती-जाती रहती हैं तो मैं भी उनके पीछे पीछे चलता रहता हूँ।

इससे मम्मी के कार्यों मे अडचन पैदा हो जाती है और वे खीझकर मुझे परे धकेल देती हैं। बडबडाती रहती हैं कि 'इतना बडा हो गया है पर अपने पर रत्ती भर भरोसा नही है। दुनिया भर के भूत प्रेत बस इसको खाने के लिए ही रह गए हैं। और तो जैसे कोई दूसरी जगह उनके लिए बाकी ही नही रही है। जाकर पढता क्यो नही है? अपना गृह-काय क्यो नही पूरा करता जाकर?"

डरते-डरते मैं पढने की टेबल पर जाता हूँ। इसी समय अलमारी के पीछे चूहे की खडखडाहट को सुनते ही मेरे रोगटे पुन खडे हो जाते हैं और मैं मम्मी के पास वापस लौट आता हूँ।

चूहे के मामले मे मम्मी खुद डरपोक है सो मुझे कुछ नही कहती और रसोई मे ही गृह-कार्य कर लेने की इजाजत दे देती हैं।

डर की इस भावना से मुक्ति पाना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। रात के समय अँधेरे मे तो मेरे डरने के सैंकडो कारण मौजूद हैं, जैसे— रोते हुए कुत्ते की आवाज, हवा की साँय साँय, बादलो की गडगडाहट, बिजलियो के कडकने की आवाज आदि। किन्तु दिन मे भी कई बातो से मुझे डर लगता है। उनमे कुत्ते का डर सबसे प्रबल है। उसको आसपास मँडराता देखते ही मैं डर से भाग खडा होता हूँ। किसी कुत्ते को भोंकते हुए अपनी ओर आते देखते ही मेरे रोगटे खडे हो जाते हैं, जीभ तालू से चिपक जाती है और गला मानो अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे समय मैं भलीभाँति चीख भी नही पाता।

डर की ये सारी बातें प्राय मम्मी से सुनी हुई बातो की उपज हैं। इसलिए मम्मी की और बातो को भले ही मैं अनसुनी कर देता हूँ यहाँ तक कि उनके द्वारा पीट जाने पर भी मैं कई बार जिद पर अडा रहता हूँ लेकिन ज्योंही मुझे डराकर वे कोई बात कहती हैं तो उसके बाद मेरे लिए अपनी जिद पर अडे रहना कठिन हो जाता है। फिर तो मैं उनकी

बात मानने को विवश हो जाता हूँ।

अब जैसे स्कूल पैदल आना जाना मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा है — मैं चाहता हूँ कि मैं बस के बंधन से मुक्त होकर अपनी ही मस्ती से पैदल आऊँ जाऊँ। स्कूल यदि घर से ज्यादा दूर होता तो शायद मैं ऐसा कभी नहीं सोचता लेकिन इतना पास होते हुए भी उसके लिए बस का बंधन मुझे अच्छा नहीं लगता है। लेकिन मम्मी से ऐसी डरावनी बातों को सुनकर एवं उनके द्वारा प्रकट की गई आशंकाओं से प्रेरित होकर मैं विवश हो जाता हूँ और बस में ही आना जाना करता रहता हूँ। हालांकि फुटपाथ के आकर्षण मुझे सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

पापा के अपने आदर्श हैं। वे जीवन में ऐसी फालतू बातों की ओर अधिक ध्यान नहीं देते हैं। उनके लिए ट्रैफिक किसी प्रकार से खौफ का कारण न होकर एक वास्तविकता है। और ट्रैफिक से डरने को वे नितांत गैरजरूरी आदत मानते हैं।

कई बार वे मेरी बात का समर्थन करते हुए मम्मी से कहते भी हैं कि ट्रैफिक से कितने दिन तुम इसे बचाकर रखोगी। अभी तो चलो यह छोटा है। लेकिन एक दो वर्ष बाद तो इसे अनेक कारणों से अकेला आना जाना पड़ेगा। आज तो चलो तुम डरा फुसलाकर इसे रोक लोगी लेकिन कल जब यह बड़ा हो जाएगा तो क्या तुम चाहकर भी इसे घर के घेरे में बाँध रख पाओगी? तब यदि इसका आत्मविश्वास नहीं पनपा तो यह आगे कैसे बढ़ पाएगा? यह कोई लड़की तो है नहीं कि घर में ही बँधा रहेगा। लड़का है, खेलेगा, कूदेगा, ऊधम करेगा, मटरगश्ती करेगा तभी तो आगे चलकर कुछ बन सकेगा? नहीं तो घरघुस्सू बनकर भोंदू ही बना रह जायेगा।"

अपने ऐसे ही उदार विचारों के कारण पापा जब कभी मुझे साथ ले जाते हैं तो अक्सर अकेले ही सड़क पार करने के लिए मुझे प्रेरित करते हैं। मैं तब उत्साह से भर यह कार्य कोई एडवेंचर करने की भावना से परिचालित होकर करता हूँ। मैं बड़ी आसानी से वाहनों से बचते हुए सड़क पार कर लेता हूँ।

ऐसे समय जब कभी मम्मी भी साथ होती हैं तो दूसरे किनारे पर

पहुचकर जब मैं घूमकर पीछे की ओर देखता हूँ तो पाता हूँ कि सडक के उस पार मम्मी घबराई हुई खडी हैं। मुझे फुटपाथ पर पहुच गया देखकर अब सन्तोष की सास ले रही हैं। फिर पापा का वे जिन नजरो स देखती हैं उसमे भयमिश्रित गौरव का भाव अधिक रहता है। मेरी इस उपलब्धि से जहा वे अभिभूत होती है वही व अपने ही भीतर की भयातुरता के कारण घबराइ हुई भी हुआ करती है।

पापा के लिए ट्रफिक कोई बडी बात नही है। इसके बावजूद वे भी मुझे पदल आता जाता हुआ नही देखना चाहते हैं। उनक लिए सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक मायन रखती है।

वे यद्यपि बहुत बडे अफसर नही हैं सिफ दूसरी श्रणी के अधिकारी हैं फिर भी अपन को सदव बडे अफसर की गरिमा मे महिमामण्डित बनाए रखते है। उनका हर काय अपने बडप्पन की स्वय उद्घोषणा करता हुआ सामन आता है। पद के दम्भ के कारण वे दूसरा स अपने को ऊचा समझते है और यह चाहते भी है कि घर के हर क्रियाकलाप से वसा ही भाव प्रकट होना चाहिए। प्रदशनप्रियता पापा के लिए सबसे बडे जीवन मूल्य की तरह है और उसे पापा घर के प्रत्येक सदस्य म देखना चाहत हैं।

घर से बाहर निकलते समय वे इस बात के लिए सजग रहत ह कि मेरे कपडे धुले हुए और इस्तरी किए हुए ह या नही। जूता पर पालिश है या नही। जेब मे रुमाल धुला हुआ और साफ है या नही। कुल मिलाकर मैं दूसरे बच्चो जैसा साधारण तो नही दिख रहा हूँ? देखन म ही मैं उनसे श्रेष्ठ, विशिष्ट और सुन्दर दिखलाई दे रहा हूँ या नही?

ऐसी अभिरुचियो के कारण पापा मुझ स्कूल बस म इसलिए नही भेजत है कि मैं ट्रफिक के कारण दुघटनाग्रस्त हो जाऊँगा बल्कि इसलिए कि एक अफसर का बेटा होकर मैं भला पदल कस जा सकता हूँ! जब हमसे निम्न स्थिति वाले लोगा के बच्चे बस मे आत जात हो तो मेरा यो पदल आना-जाना पापा को भला कैस स्वीकाय हो सकता है! मेरी बस की सवारी का सीधा सम्ब ध पापा के लिए उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा स जो है।

इसके अलावा मेरे द्वारा बस का उपयोग करना मम्मी-पापा को बात चीत करने का एक विषय भी प्रदान करता है। मैं देखता हूँ कि जब भी कोई परिचित दम्पति हमारे घर पर मिलने के लिए आते हैं या हम लोग उनके घर जाते हैं तो बड़े लोगों के बीच म वार्ता का मुख्य विषय बच्चे ही हुआ करते हैं। यही एकमात्र ऐसा विषय होता जिसम औरतें और आदमी सभी उत्साहपूर्वक एकजुट होकर बातचीत कर लेते हैं। नहीं तो औरतें ज्यादातर घर-गृहस्थी की बातें करती हैं तो आदमी दफ्तरों की या राजनीति की। सभी लोग मिलकर तो सिर्फ बच्चों की, स्कूलों की अध्यापिकाओं के पढ़ाने के ढंग की पाठयक्रम वेशभूषा आदि की ही बातें किया करते हैं।

फिर घुमा फिराकर बातें बसों पर, ड्राइवर के व्यवहार पर, बसों की स्थिति पर आ जाती हैं। एक बार बस पुराण छिड़ जाने पर फिर तो सभी एक दूसरे से बढ़ बढ़कर उसकी बातें करने लगते हैं। ऐसे समय जिनके बच्चे बसों म नहीं आते जाते वे लोग सहम-स जाते हैं। एक गहरी चुप्पी साध लेते हैं या विषयांतर के लिए लालायित हो उठते हैं। अपने अन्तमन मे वे अकारण ही अपराध भाव महसूस करने लगते हैं।

मैं देखता आ रहा हूँ कि 'बस पुराण' के इन वाचकों म मेरे मम्मी-पापा भी सदैव जोर शोर से भाग लेते रहते हैं। चूंकि मैं बस का उपयोग करता हूँ इसलिए वस हीनभाव से वे कभी ग्रस्त नहीं हो पाते। ऐसे अवसरों पर बढ़ चढ़कर इतनी बातें करते हैं कि इससे उनके अहं की तुष्टि होती रहती है।

मैं तो जहाँ बस से बुरी तरह दुःखी हो रहा हूँ उसे बिलकुल पसन्द नहीं करता, उस बोरियत से ऊबकर तथा फुटपाथों के आकर्षणों से अभिभूत होकर मैं पैदल ही आना जाना चाहता हूँ वहीं मम्मी पापा के द्वारा सदैव ऐसा न करने के लिए विवश किया जाता है। उस बाध्यता के लिए मम्मी के अपने कारण हैं। पापा के अपने। और साथ साथ होने पर मम्मी-पापा के अपने।

उनके दबावों का बोझ कुछ इस कदर भारी होता है कि मैं उसके नीचे अपनी स्वेच्छाचारिता को, अपनी अभिलाषाओं को कुचलवाने के लिए

विवश हो जाता हूँ। इसने तथा इसी प्रकार की अन्य बातों ने ही शायद मेरी प्रतिरोधिनी शक्ति को समाप्त कर दिया है। बालक होते हुए भी मैं धीरे धीरे अनचीन्ही प्रौढता को धारण करता चला जा रहा हूँ। और अपने लिए जीवन के विघातक तत्वों की सृष्टि करने वाला बनता जा रहा हूँ।



"पप्पू! चल रहा है क्या घर?" नितिन ने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर लगभग चक्कारते हुए मुझसे पूछा।

उस समय मैं अपने में ही कहीं खोया हुआ खड़ा था।

ऐसा होना अकारण नहीं था। बात ही कुछ ऐसी थी कि मेरा चिंतित हो जाना स्वाभाविक था।

स्कूल में आज अर्द्धवार्षिक परीक्षा का परिणाम सुनाया गया था। सारी कक्षा में मैं तीसरे स्थान पर आया था।

प्रगति-पत्र देते हुए बहिन जी ने मेरी पीठ थपथपायी थी। सबको सुनाते हुए कहा था, "इस बार इस लड़के की प्रगति उल्लेखनीय है। इसने बहुत मेहनत की है और खूब अच्छे अंक अर्जित किए हैं। चित्रकला में थोड़ी गलती कर देने से यह पिछड़ गया है वरना अन्य सभी विषयों में यह सबसे आगे है।"

बहिन जी के द्वारा ऐसा कहने पर सभी लड़के मेरी ओर देखने लगे। मैं हल्का सा झेंप गया था। अनायास ही मेरी आँखें नीचे झुक गईं। लेकिन उनके झुकते झुकते हुए भी मैं कुछ लड़कों के नेत्रों में प्रशंसा का और कुछ के नेत्रों में ईर्ष्या का भाव सहज ही पढ़ गया था। हर्षमिश्रित संकोच ने भरकर मन किसी तरह अपनको कापी में उलझाए रखा। लेकिन मन में निश्चित रूप से मैं अपूर्व खुशी अनुभव कर रहा था।

इसके बावजूद छुट्टी होने पर मैंने अपनको अकेला, उदास और दुःखी ही पाया। एक निराशा सी मुझमें छा गई। वह खुशी जो बहिन जी

के द्वारा प्रशंसा किए जाने पर प्रकट हुई थी कपूर की तरह सहसा विलुप्त हो गई। गौरव की जिस तरल भावधारा में मैं अब तक बहा जा रहा था वह यथार्थ की रेतीली मरुभूमि में आकर जैसे एकाएक सूख गई। और मैं अव्यक्त चिंता से कातर हो उठा। उसको प्रकट होने के पर्याप्त अवसर जो मौजूद है।

पिछले वर्ष की बात मैं अभी तक भूला नहीं हूँ। पिछली कक्षा में मैं सातवें स्थान पर आया था। मैं खुश खुश घर पहुंचा था। आशा कर रहा था कि पापा अपने वचनों के अनुसार मुझे गेंद बल्ला दिलवाएंगे।

नितिन बड़ी-बड़ी बातें करके सदैव मुझे नीचा दिखलाता रहता है। अपने दादा जी की हेकड़ी दिखलाता है। जब भी उनके पास रहकर वापस आता है अपने साथ कोई न कोई चीज लेकर आता है। कभी खिलौने तो कभी खेल का सामान।

उस दिन मैं उसे नीचा दिखलाना चाहता था। मैं गेंद-बल्ला खरीद कर उसे दिखला देना चाहता था कि तू तो छोटी मोटी चीजें ही लाया करता है। देख मेरे पास कितना बढ़िया बल्ला है। क्योंकि मुझे पूरा भरोसा था कि मुझे पहले दस लड़कों में देखते ही मम्मी पापा खुश हो जावेंगे और मेरी सारी फरमाइशें पूरी कर देंगे।

लेकिन घर जाते ही वह खुशी समाप्त हो गयी। मेरा प्रगति-पत्र देखते ही मम्मी नाराज हो गई और मुझे डाँटने लगी। मेरे न पढ़ने की आदत को लेकर मेरी भर्त्सना करने लगी। जिन जिन विषयों में मेरे कम अंक थे उनकी गलतियों को याद करते हुए मुझे जोरों से डांटने लगी। यहां तक कि क्रोध में आकर मम्मी ने पापा पर भी तीव्र कटाक्ष कर दिए और मेरे पिछड़ने की सारी जिम्मेदारी उन्हीं पर थोप दी।

मम्मी से आशानुरूप व्यवहार न मिलने पर भी मैं अभी तक आश्वस्त था कि पापा जरूर मेरी उपलब्धि से खुश होंगे। उनसे मुझे सहानुभूति मिलने की पूरी उम्मीद थी।

लेकिन मम्मी के कटाक्षों से आहत होकर पापा भी भड़क उठे थे। उन्होंने अपना वचन निभाने से साफ इंकार कर दिया। 'तू जाने और तेरी मम्मी जाने' वाला अपना प्रिय वाक्य उछालकर पापा एकदम

[illegible]

[illegible] मरार रहे हैं मुझे [illegible]

पाप है मैं ऐसे [illegible] से भी नहीं [illegible] आँसुओं की दो मोती [illegible]

मन्नी ने [illegible]

को इन्हें गेंद-बल्ला चाहिए। पढ़ने-लिखने का तो नाम ही नहीं। यही हालत रही तो बड़े होकर बन गए कुछ भी। ठेला चलाएँगे, कोयले बेचेंगे या मजदूरी करेंगे। मम्मी पापा का नाम रोशन करेंगे ये बड़े होकर। अभी तो शौक पूरे करने के लिए मिल जाती हैं सारी चीजें। इसलिए जब जो मर्जी में आता है लाट साहब की तरह हुक्म चला देते हैं। कल खुद हाथ घिसने पड़ेंगे तब पता चलेगा कि हुक्म चलाना कितना आसान है। ये तो होता नहीं कि कुछ पढ़ लिख लें। वैसा करने में तो मौत आती है। जैसे सजा सुना दी गई हो। ऐसे गन्दे नम्बर लेकर आते हैं। फिर भी चाहते हैं कि इन्हें सिर पर उठाकर रखा जाए। कोई जरूरत नहीं है फिल्म-विल्म देखने की। चलो, चलकर पढ़ाई करो।"

सारा उत्साह समाप्त हो गया। मेरे दिल से किताब उठाकर टेबिल पर जा बैठा। मन में कुछ टूटा तो नहीं पर दरार सी अवश्य पड़ गई।

बच्चे का उत्साह यद्यपि अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता फिर भी स्वयं उसके लिए तो अंतिम सत्य होता है इसे मेरे माता पिता नहीं जानते। वे तो मुझ पर बस अपने को थोपे रहते हैं। 'करो या पिटो' के सिद्धान्त का पालन करते हैं। डरकर या दबकर मैं सदैव अनिच्छित करने को विवश होता रहा हूँ। लेकिन इस तरह किए गए कार्य क्या मेरा हितसाधन कर सकेंगे?

मेरी उपलब्धियाँ स्वयं मेरे लिए महत्त्वपूर्ण हुआ करती हैं जबकि होता यह है कि मेरे माता पिता उन्हें अपने लिए महत्त्वपूर्ण बना लेते हैं। ऐसे में मैं और मेरी आकांक्षाएँ तो पीछे कहीं दुबक जाती हैं और उसके स्थान पर उनकी आकांक्षाएँ सामने आ जाती हैं। कोशिश करके भी मेरी उम्र का बच्चा क्या उनको पूरा कर सकता है? लेकिन वे लोग इस समझ नहीं पाते। मेरी उपलब्धि को अपनी उपलब्धि मान लेते हैं और अपनी दुर्बलताओं को मेरी योग्यताओं से ढकने की चेष्टा करते हैं।

ऐसे में वे भूल जाते हैं कि बच्चा होने के नाते मेरी अपनी भी कुछ सीमाएँ हैं। मेरे बोध का अपना धरातल है। जानकारी की अपनी मर्यादा है और जानने की अपनी ही अभिलाषाएँ हैं। किन्तु उनको अनदेखा करके मेरे मम्मी-पापा मुझसे ऐसी अपेक्षाएँ करने लगते हैं जो वस्तुतः मेरे

बल-बूते की बात नही होती। और जब मैं ऐसा नही कर पाता हूँ तब उनके लिए मुझे डाट खानी पडती है या पिटना अनिवाय हो जाता ह।
लक्नि क्या इससे भला मेरा किसी तरह का लाभ हो सकता है ? उल्टे मेर मन मे हीन भावनाएँ पनपनी जा रही हैं और मैं उसके कारण अपने को सवथा असमथ और अयोग्य समझने लगा हूँ।

परीक्षा परिणाम स जुडी हुई उस घटना ने मेरे मन मे स्थायी निवास कर लिया था। मैं समझ गया था कि मम्मी पापा हर हालत म मुझे अग्रणी देखना चाहते है। जिसके लिए मेरी आशाओ आकाक्षाओ को तिलाजलि देने मे भी इन्हे तनिक भी सकाच नही होगा।

उस भय का यह परिणाम हुआ कि तब स मैं हर टेस्ट और परीक्षा क समय घबराया हुआ रहने लगा। परीक्षा मेरे लिए एक आतक बन गई।

परीक्षा स भी अधिक परिणामो की चिता मुझे सतान लगी। मुझे लगता है कि मैं कही पीछे रह गया, तो घर पर डाँट पडेगी। तब पापा के द्वारा लगाया गया वह चाँटा याद हो आता है।

गालो पर जस उसकी पीडा का अहसास पुन ताजा हो जाता है। कान तक की झनझनाहट फिर उभर आती है। इसके साथ ही उस दिन जो कुछ टूट गया था उसकी कचोटमयी अनुभूति भी तरोताजा हो जाती है।

मम्मी पापा ने उस घटना को बिलकुल साधारण करके लिया था। वे तो उसे कभी का भूल चुके थे। लेकिन न जाने क्या मैं उसे भूल नही पाया। परीक्षाएँ समीप आते ही वह बात याद आ जाती है और मैं भयभीत हो जाता हूँ।

इस बार मैंने बहुत अच्छी प्रगति की थी। बहिन जी ने खुद भी तो कितनी तारीफ की थी मरी। मैं अत्यत उत्साहित हो गया था। किन्तु छुट्टी होते होते वह उत्साह जाने कहा गायब हो गया ? इसीलिए छुट्टी के बाद कधे पर बस्ता लटकाए उन्ही विचारो मे खोया हुआ खडा था। प्रगति-पत्र मेरे हाथ मे था और मैं घर जाने का साहस नहीं बटोर पा रहा था।

खराब होने के कारण आज बस नही जा सकेगी यह हमे एक दिन पहले ही सूचित कर दिया गया था। सुबह मुझे पापा छोड गए थे। वे

तो शाम को भी लेने आने वाले थे। मैंने ही जिद करके उन्हें मना कर दिया था। नितिन और मैंने कल शाम को ही तय कर लिया था कि आज स्कूल से पैदल ही लौटेंगे और फुटपाथ पर होने वाले तमाशों को देखते हुए घर जाएंगे।

कल का उत्साह आज जाने कहाँ चला गया। मैं यदि कक्षा मे पहला या दूसरा आ जाता तब बात और ही होती। मुझे भरोसा हो जाता कि घर पर किसी प्रकार की डाँट नहीं पड़ेगी। लेकिन अब मैं बुरी तरह डर गया था। इसलिए घर जाने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। फाटक के पास यों ही खड़े-खड़े बहुत देर हो गई।

एक एक कर प्राय सब बच्चे घर चले गए। थोड़े बहुत जो नहीं गए थे व मस्ती से हरी घास पर खेल रहे थे। मुझे पता है कि जब तक इन्हें लेने घर से कोई नहीं आ जाएगा तब तक ये यहीं खेलते रहेंगे। ऐसे ही निश्चित, तल्लीन और प्रसन्नचित्त।

"मैं क्यों इनकी तरह खेल नहीं पाता?" मैंने अपने-आप से ही पूछा। लेकिन कोई ठीक ठीक उत्तर भीतर से नहीं आया। बस, एक भय की अनुभूति भीतर कहीं तरलायित होती रही, इससे अधिक मैं कुछ भी समझ नहीं पाया।

वैसे इसमें ज्यादा समझने के लिए शेष रह ही क्या गया था? मेरे लिए उस भय के कारण एक ऐसी दुनिया निर्मित होती जा रही थी जिसमें एकाकी मैं पथभ्रान्त की भाँति निरुद्देश्य भटक रहा था। बाहर की दुनिया से कटकर बिलकुल अपने मे ही खोया रहने वाला।

नितिन ने आकर जब मुझे झकझोरा तब कहीं जाकर मेरी तन्द्रा टूटी थी। तब मुझे प्रतीत हुआ कि मैं स्कूल के फाटक पर ही खड़ा हूँ और आज हमें पैदल ही घर जाना है। नितिन उसी की याद दिला रहा है।

मुझे यों अपने में ही खोया हुआ देखकर नितिन ने एक बार पुनः मुझसे पूछा—'घर नहीं चलेगा क्या पप्पू?"

मुझे अचानक बोध हुआ और सम्भलते हुए कहा—"तेरे लिए ही तो रुका हुआ था। तूने कल कहा नहीं था कि हम लोग आज साथ ही घर

चलेंगे। इतनी देर से तुझे ही तो देख रहा था। कहाँ रुक गया था तू ? छुट्टी तो कभी की हो गई। मैंने सोचा शायद तू पानी पीने के लिए गया होगा। तुझे ढूढ़ते हुए मैं प्याऊ तक भी गया था पर वहाँ भी नहीं था तू तो।" अपनी झेंप मिटाते हुए एक साँस में ही मैं इतना कुछ कह गया।

'अरे यार, वो शोभा बहिन जी हैं ना। हन्डीबाज। उन्होंने आज मुझे सजा दी थी।' उसने बड़ी लापरवाही से कहा।

'क्या किसलिए दी थी सजा ? जरूर कोई बदमाशी की होगी तूने ?"

'मैं क्यों करने लगा बदमाशी। बहिन जी अपने को ज्यादा ही समझती हैं। गणित के घण्टे में वे पढ़ा रही थी। मुझे सवाल समझ में नहीं आया तो मैं विजय से पूछने लगा। बहिन जी ने देख लिया और चिढ़ गई। इत्ती सी बात पर नाराज होकर सजा दे दी कि मैं छुट्टी के बाद उन्हें सारी प्रश्नमाला करके दिखलाऊँ।"

'इतनी सी देर में तूने सारी प्रश्नमाला कर ली ?" मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए फिर पूछा— अभी-अभी तो हुई है छुट्टी।'

'नहीं रे अपन कौन से करने वाले हैं। सवाल आते हो तो करें भी। छुट्टी होने के बाद बहिन जी भी कितनी देर रुकती ? थोड़ी देर तक तो वे मेरे पास बैठी रही। फिर कोई काम याद आ जाने पर मुझे कमरे में अकेला ही छोड़कर वे बड़ी बहिन जी के पास चली गईं। मैं छुप कर पिछले दरवाजे से भाग आया हूँ। पीछे से वे जब वापस आएँगी तब कहीं उन्हें इसका पता चलेगा। लाट साहब तो भाग आए हैं।"

"कल तुझे पीटेंगी तो ?" मैंने आशंकित होकर पूछा।

मजे की बात यह थी कि उसके आचरण से मैं तो डरा जा रहा था जब कि वह खुद को अपराधी महसूस करना तो दूर उल्टा बहिन जी की कमजोरियाँ बतलाए जा रहा था।

मेरी बात सुनकर पूर्ववत निश्चिन्तता से उसने जवाब दिया—"कैसे मारेंगी ? उन्हें कौन सा याद रहेगा कल तक। और यदि याद रहा भी तो मैं कह दूगा—हम क्या करें बहिन जी, हम तो बैठे हुए काम कर रहे

थे। चौकीदार जी ने आकर कहा, 'चलो बाहर निकलो, मैं कमरा बन्द करता हूँ।' इसलिए हम चले गए। बहिन जी कौन सी चौकीदार से पूछने जाएँगी कि वह कमरा बन्द करने गया था या नहीं।'

"उस दिन भी तो तेरे मार पड़ी थी जब तू अपने दोस्त की नकल कर रहा था। तब बहिन जी ने तुझे तेरे ही फुटटे से पीटा था।" मैंने याद दिलाते हुए पूछा।

'उस दिन कक्षा म क्या ?"—उसने याद सा करते हुए कहा—"नहीं रे! मरे बिलकुल नहीं लगी थी उस दिन। मैं होशियारी स गदन झुकाकर बहिन जी के हाथ की तरफ दखता रहा। वे समझी, मैं डरकर नीचे देख रहा हूँ। ज्योंही उन्होंने फुट्टा ऊपर उठाकर मुझे पीटना चाहा मैंने चट से अपना हाथ परे हटा लिया। हथेली के बिलकुल किनारे पर लगी थोड़ी सी।'

उसन अपनी झेंप मिटाते हुए तुरन्त विषय परिवतन के लिए तेजी स कहा— 'मार तो उस दिन पड़ी थी उस कमल के। उसकी गजी खोपड़ी पर बहिन जी ने ठोला मारा था—टुड्क! जैसे मतीरा फूटा हो वैसी ही आवाज हुई थी। बचारे के टपाटप आसू टपकने लगे थे।'

यह कहकर वह हँसने लगा। अपनी पीड़ा से वह क्षुब्ध नहीं था और न ही अपनी गलती पर तनिक भी लज्जित। उलटा दूसरे की मजबूरी पर हँस रहा था। और मैं था कि अकारण ही भयभीत हुआ जा रहा था।

'और उस दिन क्या हुआ था जब बहिन जी न सबके सामने तुझ डाँटा था प्राथना के समय? तरी ड्रेस ठीक नहीं थी उस दिन।" मैंने फिर पूछा।

'डाट की कौन परवाह करता है? सौ बार डाँट लें भले ही। अपन तो इस कान से सुनत हैं उस कान से निकाल देत हैं।'

"और जो कभी बहिन जी न तेरे पापा स शिकायत की तो?'

'कर लें भल ही। होगा क्या? ज्यादा से ज्यादा पापा जी डाँट देंगे या एकाध झापड लगा देंगे। एक दिन मार पड जाएगी, और तो कुछ नहीं होगा?"

उसके लिए आशंकाएँ तो जैसे अस्तित्व ही नहीं रखती हैं। भय भी नहीं है। है भी तो बस क्षणिक। पीटे जाने का डर एक हव्वा बनकर उसके मन में बैठ नहीं गया है। इसलिए वह निडर है, निश्चिन्त है। मन मर्जी आचरण करता है। पीटे जाने पर पिट जाता है। पीछे से कुछ न कुछ ऊल-जलूल बडबडाकर अपने अहं को संतुष्ट कर लेता है। दु:ख या अपमान को धूएँ की तरह उड़ा देता है।

इसलिए उसके लिए न मम्मी का डर है न पापा का। न बहिन जी का और न किसी दूसरे का।

मैं जब उससे अपनी स्थिति की तुलना करता हूँ तो पाता हूँ कि मेरे लिए मम्मी भी एक डर हैं। पापा भी एक डर ही है। बहिन जी भी एक डर हैं। और हर कोई जो अपरिचित है एक डर ही है।

डर के अलावा न वे मेरे अपने हैं। न मैं डर के अलावा दूसरों को किसी और रूप में अपना ही पाता हूँ। आशंकाएँ तो मुझे सदैव इतना घेर रखती हैं कि उनके कारण मैं किसीसे ठीक से बात तक नहीं कर पाता। हर समय घबराया सा रहता हूँ।

एक अकारण अपराध भावना मुझमें घर कर गई है जिसके रहते मैं अपने को सदैव अपराधी महसूस करता रहता हूँ। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर बस सोचता रहता हूँ। कार्य करने में संकोच करता हूँ। कार्य शुरू करने से पूर्व ही उसके परिणाम की ओर अधिक ध्यान देता हूँ। और हमेशा उन परिणामों को अपने प्रतिकूल ही पाता हूँ।

डरकर मैं यह सोचता हूँ कि मैं यदि यह कार्य करूँगा तो जरूर कोई न कोई गड़बड़ हो जाएगी। इसी घबराहट के कारण मुझमें धीरे धीरे अकर्मण्यता घर करती जा रही है। सक्रियता का उत्साह टूट-सा गया है और उसके स्थान पर निष्क्रियता व्याप्त होती चली जा रही है।

नितिन की बातों को सुनकर मेरा डर कम होने की जगह और भी अधिक बढ़ गया। मैं उसकी तरह निर्भीकतापूर्वक अपने आचरण को उचित सिद्ध नहीं कर पाता हूँ। इसलिए बिजली की तेजी से एक विचार मन में उभरा कि "मैं कहीं पर जाने पर पीट न दिया जाऊँ" और एक हलका-सा वेदना-भाव मुख पर उभर आया।

पप्पू /

फिर भी अपनी दुबलता को भला नितिन के सामने कैसे प्रकट होने दे सकता हूँ । यह भी नही चाहता कि वह मेरी कमजोरी पकड ले क्योकि उसकी यह आदत है कि वह किसी की भी कमजोरी को दूसरो के सामने प्रकट करने मे तनिक-सा भी सकोच नही करता है । इस दृष्टि से यह पूरा चुगलखोर ही है ।

मुझे याद है कि एक बार सुरेश ने स्कूल मे बदमाशी की थी । नितिन ने उसी दिन जाकर सुरेश के माता पिता को सारी बातें बतला दी थी । बेचारे की इतनी पिटाई हुई कि मैं तो देख ही न सका ।

नितिन की इसी आदत के कारण मुहल्ले के सारे बच्चो को किसी न किसी बहाने डाट खानी पडी है या बडे लोगो के सामने लज्जित होना पडता है । सुरेश वाली घटना के बाद से तो सारे बच्चो ने उससे कुट्टी कर रखी है । एक मैं ही हूँ जो इसके साथ बोलता हूँ । इसके साथ खेलता हूँ । लेकिन मैं भी मन ही मन डरता रहता हूँ कि यह किसी बात की झूठी शिकायत ही न कर दे मेरे घर जाकर ।

मेरी भयातुरता ने जहा मुझ आत्मकेन्द्रित और जड बना दिया है वही मुझम एक और प्रवृत्ति भी भर दी है कि जब भी कोई अप्रिय प्रसग छिडता है या ऐसी बातें छिड जाती हैं जिनसे मरी दुबलताओ के प्रकट हो जान की सम्भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं तो मैं अपनी सारी शक्ति से उनस दूर हटन की चेष्टा करता हूँ । बात को बदल दन क लिए हर सम्भव प्रयत्न करता हूँ । ऐसी कोशिश करता हूँ कि यह प्रसग बदल जाए अथवा दूसरो का ध्यान उस पर स हट जाए ।

अपने बचाव के लिए तब सोच विचार कर मैं कोई नई बात शुरू कर देता हूँ, *कभी बातो के सिलसिले को एकाएक बदल देने के लिए* बीच मे ही एकदम अप्रासगिक बोल जाता हू या कभी अकारण चुप्पी साध लेता हू । यो मैंने अपने चारो ओर एक ऐसा दायरा खीच दिया है जो खतरे की सूचना देता रहता है । ज्योही कोई प्रसग खतरे के दायरे मे प्रकट हान लगता है मैं तुरत ही बात को खतरे स बाहर धकेल देने का हर सम्भव प्रयास करने लगता हूँ ।

तब मैं इसे मानकर चलता हूँ कि जो कुछ भी प्रसग उठाया गया है

वह [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] हूँ।

[illegible]

[illegible] है।

[illegible] था। [illegible] कारण [illegible] था।

[illegible] ध्यान [illegible] गया। मुझे [illegible] निखिल [illegible] लिया।

[illegible] आ गए हैं?"

मैंने [illegible] उनसे [illegible]

'कौन-[illegible] गया [illegible] था?'

"[illegible] मौजूदा [illegible] है" [illegible]

के पहले सिद्धान्त के अनुसार उनके [illegible]

"अपना तो क्या है ? बस पास हो गए हैं। इससे ज्यादा अपने को करना भी क्या है ? तू बता तू कैसा रहा ? तू तो इस बार एड़ी-चोटी का जोर लगा रहा था।"

उसके स्वर में प्रशंसा कम और व्यंग्य का भाव अधिक था।

"तीसरा।" मैंने धीरे से जवाब दिया।

'तीसरा ? उसने चौंककर मेरी बात को दोहराते हुए प्रश्न वाचक मुद्रा में मेरी ओर देखा। वह इसके लिए कतई तैयार नहीं था। पिछली बार जब मैं सातवां रहा था तो उसको भी उसने मेरी सामर्थ्य से अधिक करके ही स्वीकारा था।

वह मुझे औसत दर्जे का छात्र समझता रहा है। और इसे मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं होता कि मैं कक्षा में कोई अच्छा स्थान भी प्राप्त कर सकता हूँ।

पिछले वर्ष की मेरी उपलब्धि को भी उसने तनिक अविश्वास के साथ ही लिया था। उसे उसने टप्पेबाजी की तरह मानते हुए भाग्य की बात कहकर अति साधारण बना दिया था।

आज जब मैंने कहा कि मैं तीसरे स्थान पर आया हूँ तो वह जैसे उसे मान ही नहीं पा रहा है। उसने उडी तीखी निगाहों से मुझे घूरा। मानो मेरे चेहरे के भीतर तक झांककर वास्तविकता का अन्दाजा लेना चाहता है।

मेरे चेहरे के भावों को एकसार और अपरिवर्तित देखकर उसे अपनी आशंकाओं को टिकाने के लिए ठोस जमीन नहीं मिल पा रही थी। इस पर भी पूरी तरह आश्वस्त होने के लिए उसने पूछा—'दिखा तो तेरा प्रगति पत्र।' और मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया।

वह नहीं जानता है कि तीसरे स्थान पर आकर भी मैं खुश नहीं हो पा रहा हूँ। जिसे वह मेरी बहुत बड़ी उपलब्धि मान रहा है वही मेरे मम्मी पापा के लिए अत्यंत साधारण है। वे तो मुझे हर हालत में पहला ही देखना चाहते हैं। मेरा पिछड़ जाना उन्हें किसी भी शर्त पर स्वीकार्य नहीं है।

मुंह से कुछ भी न कहते हुए मैंने प्रगति-पत्र उसकी तरफ बढ़ा दिया।

प्रगति पत्र लेकर उसने जल्दी से मेरे अक देखे। जब उसने देख लिया कि मैं सच कह रहा हूँ कोरी गप्पबाजी नही कर रहा हूँ तो मरी हुई आशाओ के साथ उसे लौटा दिया।

उसका चेहरा जतला रहा है कि पराजित होने की उसकी अनुभूति उसे भीतर ही भीतर निचोडे जाते हुए भीगे कपडे-सा निचोड रही है।

सचमुच कितना अजीव और अविश्वसनीय लगता है वह प्रसग जबकि हमारे द्वारा सोची गई बात गलत सिद्ध होती है और हम तेजी से अपनी धारणाओ को बदलना पडता है। नितिन के साथ भी इस समय ऐसा ही तो हुआ था।

मेरे मन मे तो आया कि उसे बतला दू कि कक्षा म बहन जी ने मेरी कितनी तारीफ की है। यह भी कि चित्रकला को छोडकर अन्य सभी विषयो म मैं सारी कक्षा मे अव्वल आया हूँ।

लेकिन मुह तक आकर भी बोल फूट नही पा रह थे। भीतर स उत्साह की एक लहर उठकर मुह तक वही चली तो आती है लेकिन वही पर एकाएक ऐस बिखर जाती है। वह शब्दो का रूप नही ले पाती। सकोच के कारण मैं अपने मनोभावो को चाहकर भी प्रकट नही कर पाया।

नितिन ने ही तब एक प्रकार से मेरी सहायता की। अपनी झेंप मिटाने के लिए बोला—"तूने नकल की होगी। या किसी से पूछकर उत्तर लिखे होंगे? नही तो तेरे इतने नम्बर कहा मे आ जाते?"

"मैं क्यो करने लगा नकल किसी की। मैंन तनिक जोर देकर कहा—"मुझ तो सारे सवाल आते थे। वह तो चित्रकला मे मुझसे थोडा-सा रग फैल गया था इसलिए नम्बर कट गए। नही तो बहिन जी न खुद कहा था, मैं दूसरे सभी विषयो मे सब लडको से आगे हूँ।'

अब नितिन के पास बात बदलने के अलावा कोई चारा नही रह गया। उसने अपने को एव अपनी बात को पुन तरजीह देने के लिए विषय बदलते हुए कहा—'देख लेना इस बार तो मैं कैरम बोर्ड लेकर आऊँगा। मैंने पापा से पहले ही कह दिया था कि पास हो गया तो मैं अपनी मन-मर्जी की चीज खरीदूगा।'

'तू कक्षा से इतना पीछे रह गया है और फिर भी चीजो की माँग कैसे कर लेता है ? तुझे डाँट नही पडेगी ऐसे गन्दे नम्बर लाने पर ?"—मैंने शका व्यक्त करते हुए पूछा।

'लूगा क्यो नही ? पास जो हुआ हूँ। पिछली बार तो मैं गणित मे फेल हो गया था तब भी अपनी पसन्द की चीजें ले आया था। इस बार तो मैं साफ साफ पास हुआ हूँ। फिर क्यो नही दिलाएँगे चीजें ?"

'क्या कहेगा तू जाकर अपने पापा से ?"

' कहूँगा क्या ? जाते ही कहूँगा लाओ निकालकर घर दो पच्चीस रुपये। जब तक रुपये नही देंगे मैं प्रगति पत्र ही नही दूगा। जाते ही छुपाकर रख दूगा। कहूँगा, पहले रुपये दो तो मैं अपना प्रगति पत्र दिखलाता हूँ। नही तो नही।"—अकडते हुए उसने कहा।

"ऐसा कैसे कर लेगा तू ? नाराज होकर तेरे पापा पीटेंगे नही तुझे तब ? यो करेगा तो मार खाने से कैसे बचेगा तू ?" मैंने साश्चर्य पूछा। क्योकि मेरे लिए यह एक बिलकुल नई बात थी कि मम्मी-पापा से भी कोई यो अकडकर बातें कर सकता है ?

मारकर तो देखें जरा।" उसने आवेश मे भरकर कहा "कोई पोलपट्टी थोडे ही है ? छुट्टियो म घर जाने पर दादा जी स शिकायत कर दूगा उनकी। दादा जी के सामने अपनी सारी हेकडी भूल जाते हैं दोनो ही। जब हम गाँव जाते हैं तो मम्मी सारे रास्ते भर मुझे फुसलाती रहती है कि मैं यहाँ की बातें उनको जाकर न कहूँ। इसलिए डाक मारकर मेरी बातें माननी पडती है उनको। और फिर सबसे बडी बात यह है कि वे मारेंगे ही क्यो मुझको ? मैं पास जो हुआ हूँ। पास होने पर माँ-बाप खुश होते हैं कि नाराज ? वे खुद ही खुश होकर मुझे पुरस्कार देंगे।' मेरी मूर्खता पर तनिक हँसते हुए उसने कहा।

मुझ पर जस घन की चोट लगी। क्या ऐसा भी हो सकता है किसी घर मे ? बच्चा यो जिद करते हुए अपनी बात मनवा सकता है कही अपने मम्मी पापा स ?

मुझे पिछले वर्ष की बात याद आ गई। सातवा रहकर भी मैं मार खाने का हकदार बना था और अनुग्रहपूर्वक उत्तीर्ण होकर भी नितिन

अकडते हुए मम्मी पापा से अपने काम्य को पा गया था । इस स्थिति-भेद का कारण क्या है ? मैं नही समझ सका ।

शायद मेरी सीमाओ को मम्मी पापा पहचान रहे हैं और मुझ प अपनी इच्छाओ को बलात लादे जा रहे हैं । शायद ये लोग इस तथ्य को जान-बूझकर अनदखा कर रहे हैं कि मैं जो आचरण कर रहा हूँ मेरी अवस्था को देखते हुए वही सर्वोत्तम है । लेकिन मैं इसे सोच ही नही पाता हूँ कि मुझे घर म अपनी तरह स आचरण करके कभी खुश होन दिया जाएगा । जिद करन की छूट दी जाएगी । अनिच्छित को अस्वीकारने की तनिक सी भी स्वतत्रता दी जाएगी ।

लगा यह सब इसलिए हो रहा है कि मेर दादा जी नही हैं । मैंने तो उनको देखा तक नही है । दखता भी कसे ? मरे पैदा होने के बहुत पहले व गुजर गये थे । और दादी जी तो तब, जब पापा खुद बहुत छोटे थे । व होते तो शायद मुझे भी घर मे अपने ढग से जीने का अधिकार मिल जाता। शायद मम्मी-पापा का नियन्त्रण फिर मुझे इतनी कठोरता से जकडे नही रहता ।

नितिन जो बात बात म अपने घमण्ड को प्रकट करता है वह सिफ इसलिए कि उसके दादा जी हैं और वे उसका पक्ष लेते रहते है । उसकी जो इच्छाए उसके मम्मी पापा पूरी नही करते उनको वे पूरी कर देते है। उसके पास दादा जी के रूप म एक ऐसा हथियार है जिसस डरा धमका-कर वह पापा से सब कुछ पा लेता है । दुभाग्यवश वह हथियार मेरे पास नही है उसलिए मुझ को दबकर रहना पडता है ।

फिर मन म आया कि नितिन बात को बढा चढाकर कहता होगा । वरना यह भी क्या सम्भव है कि इतन बडे होकर भी नितिन के पापा उसके दादा जी से डरत हो ? यह जरूर अतिश्जनाओ स काम ले रहा है । यह सोचते हुए मैं जब अपने को रोक नही पाया तो उसस पूछ ही लिया, "तेरे मम्मी पापा तरे दादा जी से इतना क्यो डरते है र ? व अब छोटे-से बच्चे तो है नही कि उनसे यो डरते रह ।"

"डरेंग क्यो नही ? मेरे दादा जी को तू ऐसा वैसा समझता है क्या ? गाँव मे सबसे बडी दुकान है उनकी । कितने सारे तो खेत

इतने नौकर काम करते हैं कि पूछ मत। मेरे पापा जितना साल भर मे कमाते हैं उतना तो दादा जी एक महीने मे ही कमा लेते हैं।"

'फिर तुम लोग यहाँ क्यो रहते हो ? गाँव म ही क्यो नही रहते ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

'दरअसल पापा को गाव पसन्द नही है। शुरू से ही पापा शहर म रहे है इसलिए उनको वहाँ अच्छा नही लगता। पापा से भी ज्यादा मम्मी का मन वहाँ नही लगता। वहा बन्दिश जो है। यहाँ तो वे चारो तरफ घूमती फिरती हैं वहा तो उनको घर मे ही बन्द रहना पडता है। दादा जी के सामने सिर भी ढके रहना पडता है। इसलिए तो डरते हैं दोनो ही मेरे से। मेरा क्या है ? ज्यादा डाँटने लगें तो मैं तो गाँव मे जाकर रहने लग जाऊँगा। मम्मी पापा की गरज ही किसको है ?"

'तेरा मन लग जाता है वहाँ पर ?"

अरे ! लगेगा क्या नही ?' —उसने मेरे इस प्रश्न पर ताज्जुब प्रकट करते हुए कहा— वहा तो मजे ही मजे हैं। मन आये वहाँ घूमो फिरो। मन आये जब घर मे आओ। ट्रक्टरो म घूमो। बैलो की पूछ मरोडते हुए खेतो म चले जाओ। तालाब के किनारे खड़े होकर पानी म कक्ड फेंको। हमारे घर म ही कितने जानवर हैं। ऊँट है, बैल है गाय है भैंस है। मैं तो गाय के बछडे के साथ खेलता रहता हूँ। और भैंस तो इतनी सीधी है कि उस पर बैठ जाता हूँ तब भी कुछ नहीं कहती। बेर चुनने म भी इतना मजा आता है कि भले ही सारे दिन चुनते रहो। कोई मना नही करता। यहाँ की तरह थोड़े ही है कि किसी के घर से फूल भी तोड लो तो डाँट पडने लगती है।

नितिन अपनी ही रौ म बहे जा रहा था। मैं थोडी देर तक तो उसके गाँव पुराण को सुनता रहा फिर शीघ्र ही ऊब गया।

मैं कभी गाँव गया नही हूँ। मेरा ननिहाल भी शहर मे ही है। इसलिए गाँव तो मैंने देखा ही नही है। नितिन की बातों म ही मैं गाँव की कुछ कुछ कल्पना खडी कर लेता हूँ। लेकिन वह भी पूरी नही होती। मुझे तो उसका मम्मी पापा के लिए यो उपेक्षा भाव प्रकट करना समझ म नही आ रहा था।

मैं ऐसा करना तो दूर यह बात सोच भी नही सकता हूँ कि मम्मी-पापा को या भय भी दिखलाया जा सकता है या उनसे फायदे लेने के लिए उन पर या हावी भी हुआ जा सकता है। मैंने तो सिफ उनसे डरना ही सीखा है। इसी की शिक्षा जो दी गई है मुझे। नितिन को लेकर भी मुझे तब सन्देह हुआ। लगता तो नही था कि वह उनस डरता नही है। मुझ लगा कि वास्तव म वह उनसे डरता तो है सिफ दिखावा करने के लिए दादा जी की आड ल रहा है। इसलिए उसकी बाता को तौलने के लिए पूछ ही लिया— 'तू तो ऐसे कह रहा है जैस तू अपने मम्मी-पापा से बिलकुल डरता ही न हो। उल्टे व ही तुझस डरते है। मुझे कई बार तेरे रोने की आवाज सुनाई पडती है फिर तू कैसे कहता है कि तू उनसे बिलकुल नही डरता है?'

'मार पडती है तो क्या ? फिर मैं भी तो उन्ह मजा चखा देता हूँ। ऐसा रूठ जाता हूँ कि मम्मी मुझ मनाते मनात हार जाती है। जब तक व मेरी बात मान नही लेते मैं रूठा रहता हूँ। तब दादा जी के डर स झक मारकर वे लोग मेरी बात मान लेते ह।"

मर लिए यह फिर एक नई सूचना थी। अब कुछ और पूछने का साहस ही नही रहा। चुपचाप चलता रहा।

बातो ही बाता मे रास्ता कब पूरा हो गया इसका पता भी नही चला। हम ध्यान ही नही रहा कि हमने फुटपाथ के तमाशे देखने के लिए ही पैदल जाना पसन्द किया था। लेकिन बाता म खो जाने के कारण उस ओर ध्यान ही नही गया।

घर दिखाई देते ही मेरी घबराहट एक बार पुन बढ गई। वैसी ही जसी स्कूल से रवाना होने से पहने मुझमे थी और जिसे बातो मे खो जाने के कारण मैं भूल सा गया था। बुखार की तरह उसी को मै अपने भीतर दुबारा चढता हुआ महसूस करन लगा।

मेरे पाँव अपने आप बोझिल होन लगे। जूत तो सडक पर यो चिपकने लगे मानो अभी अभी उस पर पिघला हुआ डामर बिछाया गया हो। हृदय जोरो से धक धक करन लगा। उसकी धडकन को मैं स्पष्ट अनुभव करने लगा। उस घबराहट के कारण मेरी गति मे अपने आप

शिथिलता प्रकट होने लगी।

मैं नितिन से पिछड़ने लगा। उसके लिए डर लेशमात्र भी न था बल्कि घर के पास आ जाने से उसका उत्साह और भी बढ़ गया। लम्बे-लम्बे डग भरकर वह शीघ्रातिशीघ्र घर पहुँचने के लिए उतावला हो उठा। मुझे या धीमा पड़ते देखकर वह खीझ सा उठा।

एक बार पीछे मुड़कर उसने मेरी ओर देखा। कुछ क्षणों तक रुककर उसने मेरे समीप आ जाने की प्रतीक्षा की और जब उसने मुझे वैसे ही सुस्त भाव से आते देखा तो वहीं से जोर से चीखते हुए घर की ओर भाग गया—'मम्मी ई!! मैं पास्स हो गयाहूँ ऊँ ऊँ ऊँ।' हूँ के 'ऊँ' को लम्बा खींचकर वह उस तब तक बोलता रहा जब तक कि घर के दरवाजे तक पहुँच नहीं गया।

उसके चले जाने पर मेरी घबराहट और भी अधिक बढ़ गई। मेरी गति बिलकुल मन्द हो गई। धीरे धीरे चलकर मैं फाटक तक पहुँचा। लेकिन भीतर जाने की हिम्मत नहीं हुई। अन्दर के माहौल को पशुओं की भाँति तीव्र घ्राणशक्ति से सूँघ लेने की चेष्टा करने लगा। लेकिन सफल नहीं हो सका।

पापा घर पर ही हैं यह तो पता चल रहा था लेकिन हमेशा की तरह मम्मी बाहर खड़ी हुई मेरी प्रतीक्षा नहीं कर रही थी। वस्तुतः वे प्रतीक्षा मेरी नहीं मेरे परीक्षा परिणाम की किया करती हैं। आज पहली बार वे बाहर नहीं खड़ी थी। कुछ समझ में नहीं आया कि आखिर माजरा क्या है?

इसी समय बैठक के कमरे से एक जोरदार ठहाका सुनाई दिया। निश्चित रूप से यह ठहाका खन्ना अंकल का ही था। अपने एक खास अन्दाज में वे हँसते हैं। इतनी जोर से कि कमरे की दीवारें तक गूँजने लगती हैं। उनकी हँसी की आवाज मुहल्ले की खामोशी को चीरती हुई दूर तक चली जाती है।

उसी आवाज के सहारे पड़ोस की सभी आण्टियाँ समझ लेती हैं कि आज हमारे घर खन्ना अंकल आये हैं। उनमें से कोई-कोई अपने अनुमान को पक्का करने के लिए मुझसे पूछ भी लेती हैं—'पप्पू! आज तेरे घर

खन्ना जी आये हैं न रे ?"

मेरे खन्ना अंकल न केवल मस्तमौला जीव हैं बल्कि अपने साथ मस्ती का आलम भी लिए फिरते हैं। उनके रहते कोई भी व्यक्ति चिंतित या गमगीन नहीं रह सकता है। हर समय खुद तो निश्चिंत रहते ही हैं अपनी छूत से दूसरों को भी खुशमिजाज बना देते हैं। हरएक से बड़ी आत्मीयता और अपनत्व से मिलते हैं। चिन्ता फिक्र तो जैसे उनके लिए अस्तित्व ही नहीं रखते।

पापा के दूसरे दोस्तों की तरह नहीं हैं ये। रूखे रूखे-से और घोर दम्भी। और कुछ नहीं तो अपने बड़े होने का रौब तो प्रकट करते ही हैं वे लोग। मुझसे बिलकुल घुलते मिलते नहीं। ज्यादा से ज्यादा मेरे गाल पर एक हलकी सी चपत लगा देते हैं और बस खत्म। फिर अपने मे ही लौट जाते हैं। दुबारा बतियाने का, प्यार से पास बुलाने का, स्कूल की गप्पें लगाने का तो सवाल ही नहीं।

उन सबसे ठीक विपरीत हैं खन्ना अंकल। मेरे तो वे सबसे प्रिय दोस्त की तरह हैं।

हमारे यहां आने पर मेरे प्रति उनका एक खास तरह का व्यवहार होता है। सबसे पहले हाथ मिलाएँगे। फिर अपनी कैप मेरे सिर पर रख देंगे और फिर मिलिट्री के बड़े अफसरों को ठोके जाने वाले सैल्यूट की तरह अकड़कर मुझे सलाम ठोकेंगे। जब तक मैं भी उन्हीं की तरह सलाम नहीं कर दूंगा तब तक वैसा करने के लिए दिक करते रहेंगे।

मैं शरमाते हुए ढीले ढाले अन्दाज में हाथ को ललाट तक ले जाता हूँ। तब तक दूसरा कंधा नीचे की ओर झुक जाता है। शरीर अजीब सी अष्टावक्री मुद्रा धारण कर लेता है।

अंकल तब ठहाका लगाकर घर को गुंजा देते हैं। मुझे उठाकर गोद मे ले लेते हैं। जेब में से निकालकर टाफी देते हैं।

कभी मुझसे मेरी, मेरे दोस्तों की, स्कूल की, अध्यापिकाओं की बातें करते हैं। हमारी शीला बहिन जी को वे पहचानते हैं। इसलिए हमेशा उनकी मजाक उड़ाएँगे, उनकी नकल करके दिखलाएँगे।

खन्ना अंकल जब तक घर मे रहते हैं तब तक घर के किसी कोने में

लडाई झगडा, डॉट-फटकार चिन्ता-क्षोभ आदि नही रह पाते हैं। बल्कि उनको प्रकट होने के लिए किसी तरह का कोई अवसर ही नही रहता। उस समय तो हर समय डाँटने-मारने वाले मम्मी पापा भी बात-बात मे हँसते रहते हैं। उनकी वे सारी आदतें जो आम तौर पर कटुता, रोष या क्रोध के रूप मे प्रकट होकर सामने आती रहती है, जाने कहाँ छुप जाती है।

तब मैं ही नही बल्कि घर के सभी लोग जीवन की खुशमिजाजी का, उसके सही स्वरूप को न केवल अनुभव करते हैं बल्कि उसे भोगते भी हैं। वर्षा की हलकी पडी की भांति हलके हलके आनन्द की फुहारें हम सब पर बरसती रहती है और हम भावस्नात से उसमे अधिकाधिक भीगते रहते हैं। आनन्दित होते रहते हैं। सुखी होते रहते हैं।

इसलिए उस ठहाके को सुनकर जब मुझे भरोसा हो गया कि आज खन्ना अकल भीतर आए हुए हैं तो मेरी सारी चिन्ता और चिन्ताजनित जडता एक क्षण मे ही दूर हो गयी। अब कोई डर की बात नही है। आज मेरा तीसरे स्थान पर आना अपना सही प्रतिदान पा सकेगा। आज मुझे सलीब पर टागा नही जाएगा। आज घर मे कोई डॉट बॉट नही पडेगी। आज ।

मैंने लपककर फाटक खोला और तेजी से दौडकर बैठक के कमरे म जा पहुचा। चुपके से पीछे जाकर खन्ना अकल की आखें मूद ली और पूछा, 'बताओ हम कौन है?' अकल भी खुश होकर खडे हो गए। अपनी आदत के अनुसार उ होने मुझे प्यार किया और मुझे टाफिया दी।

प्रगति पत्र की ओर ध्यान जाने पर उसे लेकर खोलकर अक देखने लगे। खुश खुश उसे देखते रह। जोर जोर से अक बोलने लगे, 'अंग्रेजी म सौ मे से नब्बे, हिन्दी मे नब्बे, गणित म सौ मे से सौ विज्ञान मे अठासी, सामाजिक ज्ञान मे पचासी, सगीत म पचास मे से पचास, चित्रकला मे पचास मे से पच्चीस। कक्षा मे स्थान तीसरा।'

"वाह मेरे शेर", कहते हुए अकल ने खुशी से भरकर प्रगति पत्र हवा मे उछाल दिया। मेरे दोनो हाथ पकडकर झूमन लगे, नाचने लगे। 'डा रा डी डी डम। डा रा डी डी डम्' बोलते हुए अपनी बेसुरी आवाज मे

गान भी लगे।

मम्मी पापा अपनी हँसी नही रोक पाए। मैं जो खाना अकल से ही इतना साहस बटोर पाया था, मन मे फिर डर गया। परिणाम जानकर मम्मी-पापा का रुख कैसा है इसे जानने के लिए सजग हो गया। सच बात तो यह है कि अकल के साथ नाचते हुए भी मन म डर रहा था।

मौसम का पूर्वानुमान करने के लिए छुपी नजरो से मैंने मम्मी पापा के चेहरे के भाव पढ डाले। पापा के चेहरे पर तो मुझे कहीं कोई खिचाव नजर नही आया शायद आनन्द के इन क्षणो म उन्होने इस बात पर गौर ही नही किया हो पर मम्मी के चेहरे पर मुझे खुशी की परत के नीचे हल्का सा तनाव दृष्टिगत हुआ। मुझे लगा कि या तो व इतनी खुश थी कि वह तनाव उस हल्केपन म ही प्रकट हुआ था या फिर तनाव को ढँकने के लिए व जरूरत से ज्यादा खुशी का भाव जाहिर कर रही है।

मैं आश्वस्त हुआ कि फिलहाल मौसम मे परिवतन की कोई सभावना नही है। कम से कम आज के लिए तो मौसम ऐसा ही खुशमिजाज और आनन्ददायक रहेगा। इसलिए उत्साहित होकर अपनी सारी तन्मयता के साथ मैं अकल के साथ नाचने लगा।

अकलजी अपनी ही रौ म नाचे जा रहे थे। गाए जा रहे थे। जब कि वास्तविकता यह है कि उन्हे न नाचना आता है न गाना। नाचने के नाम पर वे अजीब ढग से हाथ पाव इधर उधर उछाल रहे थे। कूल्हे मटका रहे थे। विचित्र भाव भगिमाए बनाते हुए स्वय को हास्यास्पद बना रहे थे। स्वय भी उस सुख को मनोयोगपूर्वक लूट रहे थे और गाने के नाम पर वे फिल्मी गानो की एकदम बेसुरी आवाज म गाए जा रहे थे।

पापा भी कोई कम थोडे ही है वे अकल को निरतर उकसा रहे हैं। तालियां बजा-बजाकर उनकी तारीफ करते जा रहे है। लाजवाब, बढ़िया, बहुत बढिया बोल बोलकर उनकी प्रशसा करने के साथ साथ [illegible] जा रहे हैं। मम्मी हँसते हँसते दुहरी तिहरी हो रही है। हँसी [illegible] न पाने के कारण साडी के पल्लू से मुह ढककर उसे [illegible] की चेष्टा कर रही है।

लम्बी अवधि तक उछल कूद करने से थक जाने [illegible]

निढाल होकर सोफे पर पसर गए। उनकी साम फूल गई। गुलाबी ठंड के दिनों में भी उनके ललाट पर पसीना छलक आया।

मम्मी ने कालोचित प्रस्ताव करते हुए कहा, 'अब काफी का दौर होना चाहिए। मैं अभी स्टोव पर पानी चढाकर आती हूँ तब तक आप थोडा-सा सुस्ता लीजिये। लेकिन अकल ने तेजी से हाफते हुए कहा, ना भाभी ना। कोरी काफी से काम नही चलेगा।"

मम्मी एक क्षण तो असमजस म पड गई। फिर याद करते हुए से कहा "काफी के साथ फिर पकौडे भी बना देती हूँ। और तो कुछ है नही आज घर मे।"

फिर उलाहना देते हुए कहा, "आप आते ही ऐसे दिन हैं जब घर मे खाने के लिए कुछ भी नही होता।"

'नही पकौडो-सकौडा की जरूरत नही है। एक तो वसे ही शाम पड गई है। फिर नाचते नाचते इतनी भूख लग आई है कि अब धीरज नही है। ऊपर से आपकी ये काफी पी तो फिर खाना बिल्कुल ही गोल हो जायेगा।'

ऐसा है तो खाना यही खा ले। कभी हम भी तो उपकृत कर दिया कर। पापा ने इतनी देर के बाद बातो मे सम्मिलित होते हुए कहा।

यह हुई न कोई बात! इसे कहते हैं दिलेरी! पर सच्ची बात तो यह है कि अपने म अब इतना धीरज नही है कि खाना बने तब तक बठे रहे।'

'तो फिर ऐसा कर लेते है कि आज खाना बाहर चलकर ही खा लेते हैं। दोनो ही बातें हो जाबेंगी। भूख का भी इलाज हो जाएगा और कुछ चेंज भी हो जाएगा। पापा ने प्रस्ताव किया।

"अब आया है उल्लू की दुम रास्ते पर। साले का बेटा पास हुआ है और मूजी की तरह रुपयो पर कुण्डली मारे बठा है।" फिर पुरानी बातें याद कर मम्मी से कहा भाभी, ये खुद तो बिलकुल गोबर गणेश था। सारी क्लास मे फिसड्डी रहता था। यह तो हमी थे जो दोस्ती क कारण इसका उद्धार कराते रहते थे। दूसरी ओर साले को देखो तो सही, बेटा इतने अच्छे नम्बर लाया है और पस खाली करते हुए जोर आता

है। इतनी देर घिसाई की तब कहीं जाकर होटल का नाम मुह पर आया है।"

अकल की ये बातें सुनकर मम्मी भी हँसने लगी। पापा अपने लँगोटिया दोस्त के द्वारा या खिल्ली उडाए जाने के कारण तनिक झेंप गए थे। उन्होने बस खीसें निपोर दी थी। उसस प्रेरणा लेते हुए अकल ने और कहा, "लेकिन तू डरता क्यो है? हमारे लिए तो तूने हाँ भर ली यही बहुत है। दावत होगी पर हमारी तरफ से। पप्पू के पास होने की खुशी मे आज दावत हम देंगे। और मीनू तय है यही से—नरगिस कोफ्ता, आलू छोल दही बड़े और एकदम लाजवाब कबूली। सबमे आखिर म स्वीट डिश' रस मलाई। इसलिए भाभी आप तयार होकर फटाफट चली आओ। हम लोग चलेंगे 'अम्बर' म। अभी। इसी वक्त। बस, पाच मिनट का समय है आप सबको तैयार होन के लिए। तीनो म से जो भी देरी करेगा उस पर पाच रुपय का जुमाना। भाभी! देख लेना खतरा सबसे अधिक आपको ही है क्योकि बीस मिनट तो आपको मेकअप करने म ही लगते होग।" अकल ने जोश मे लगातार बोलते हुए कहा।

आप भी भाइ साहब मजाक करत हैं। मैं बस अभी गई और अभी आई। यदि पाच मिनट के अन्दर अन्दर आ गई तो दण्ड आप पर लगगा।

मम्मी न शत वदते हुए पूछा, "बोलो है मजूर?"

"मजूर।" अकल ने हामी भरते हुए कहा।

दखो फिर वादे से हट मत जाना!" मम्मी ने जार देत हुए दुबारा कहा।

मुकरन का सवाल ही नही।" कहते हुए अकल न सिर झुकाते हुए तुलसीदास की पक्ति दोहरा दी—'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाँहि पर वचन न जाई।"

मम्मी हँसत हुए तैयार होने चली गईं।

थोडी देर बाद हम लोग अम्बर' म बठे थे। खना अकल न उस सारी शाम को अपनी जिन्दादिली से एक खुशनुमा शाम बना दिया। एक ऐसी शाम जो दूसरी अन्य शामो से बिलकुल भिन्न थी। एक ऐसी

शाम जो आमतौर पर हमारे घर मे नही आती है। खास तौर से उस दिन तो हरगिज नही आती है जिस दिन मेरा परीक्षा परिणाम आता है। भले ही वह कोई छोटा मोटा टेस्ट ही क्यो न रहा हो।

क्योकि ऐसा हो ही नही सकता है कि मैं शतप्रतिशत अक लाया होऊँ या मुझसे कोई त्रुटि न हुई हो। और गलती न कर पाने के कारण घर पर यो इतने उत्साह से लिया गया होऊ।

सबसे बडी बात यह थी मेरे छोटे से जीवन में यह शाम पहली शाम थी जो सिर्फ मेरे प्रति समर्पित थी। आज मेरे लिए कार्यक्रम बना था। मेरे लिए खुशिया मनाई गइ। मेरा परीक्षा परिणाम कटुता या भर्त्सनाएँ लेकर सामने नही आया था बल्कि जश्न मनाने का हक हासिल कर सका था।

मैं सोचने लगता हूँ कि काश, खन्ना अक्ल मेरे हर परीक्षा परिणाम वाले दिन हमारे यहाँ आते रहे तो कितना अच्छा रहे।

पर ऐसा नही हुआ। थोडे दिनो बाद उनका तबादला हो गया। फिर पापा का कोई ऐसा दोस्त मैंने नही देखा। और शामे मेरे लिए पूर्ववत् मनहूस होकर रह गई।



सुबह नहा धोकर मैं नाश्ता करने के लिए तयारी कर रहा था कि रेणु दीदी के घर से थाली पीटने की आवाज आने लगी। रेणु दीदी की दादी जी ने खुद छत पर चढकर थाली बजाई थी और फिर रेणु दीदी तो उसे पागलो की तरह लगातार बजाए जा रही थी। मुझे पता नही था कि थाली क्यो बजाई जाती है। कुछ कुछ अजीब सी लगा कि आज अचानक ये लोग ऐसा क्यो कर रहे है।

आरती के समय मन्दिरो म घण्टे घडियाल बजाते हुए तो मैंने लोगो को देखा है। लोग 'ओम जय जगदीश हरे' की आरती गाते जाते हैं और साथ ही साथ घण्टे भी बजाते जाते हैं।

गर्मियो की छुट्टिया मे मैं जब जोधपुर जाता हूँ तो वहाँ पर बिल्कुल भोर म लोगो को प्रभात फेरी लगाते देखता हूँ। सुबह सुबह जब अँधेरा पूरी तरह छँट भी नही पाता है, तब छत पर सोया हुआ मैं उन लोगो की रामधुन और घण्टे की आवाज को सुनता हू। घण्टे की ध्वनि के साथ वे लोग बडी मधुर आवाज मे 'हरे रामा, हरे रामा रामा, रामा हरे हरे। हरे कृष्णा, हरे कृष्णा, कृष्णा, कृष्णा हरे हरे" गाते जाते हैं। उस कर्णप्रिय आवाज को सुनकर प्राय ही मेरी आँखें खुल जाती हैं।

तब सुबह-सुबह की उस ठण्डी हवा मे नीद खुल जाने की खीज भी नही होती। बल्कि उसे सुनना बहुत अच्छा लगता है। कई बार मेरी इच्छा होती है कि मैं भी उनके साथ यो गाता हुआ फेरी लगाऊँ। लेकिन पापा के डर से जा नही पाता। मैं जानता हूँ कि ऐसा कहते ही पापा अभी डाँट देंगे कि 'सुबह तो हुई नही और इस घर से बाहर भागने की पडी रहती है। दिन-भर धूप मे खेलते फिरेंगे तब भी खेलने से पेट नही भरता इनका जो मुह अँधेरे ही बाहर जाने को मचलने लगे हैं।" इसके अलावा स्वय मुझको कुत्ता का डर भी तो लगता है। सत्सग भवन जाते हुए कही कोई काट ही न ले इस भय स भी मैं अचचल बना उस मधुर धुन को सुनता रहता हूँ।

आज रेणु दीदी के घर थाली बजते देखकर इसीलिए मैं थोडा सा अचम्भे म पड गया। मम्मी उस समय रसोईघर मे थी और पापा स्नान-घर म। जलते हुए स्टोव की आवाज के कारण मम्मी न शायद थाली की आवाज नही सुनी थी। मुझस रहा नही गया और मैंने जाकर मम्मी से पूछ ही लिया।

मम्मी! यह थाली क्यो बजा रहे हैं ?"

क्या ?" मम्मी एकदम चौकी थी जैसे मेरी बात पर विश्वास ही न हुआ हो। फिर पूछा, "कौन बजा रहा है थाली ? क्या रेणु क घर मे बजा रहे हैं ?"

एकसाथ अनेक बातें पूछ गई मम्मी।

मेरे द्वारा हामी भरने पर भी उन्ह पूरा विश्वास नही हुआ। उबाल आए बिना ही मम्मी न दूध को स्टोव पर स नीचे उतार दिया

ही टोह लेने बाहर फाटक तक चली गई।

रेणु दीदी खुशी से झूम झूमकर थाली बजाए जा रही थी। मम्मी आधा फाटक खोलकर उनके घर की तरफ झांकने लगी। उस समय मैंने उनके चेहरे पर एक अजीब किस्म का भाव देखा। जिसमें खुशी झलक तो रही थी पर पूरी तरह नहीं बल्कि खुशी और अविश्वास का मिला जुला भाव उनके चेहरे पर अटका हुआ था।

मैंने देखा, थाली की आवाज को सुनकर मुहल्ले के सभी लोग दरवाजे पर खड़े हुए रेणु दीदी के घर की ओर देख रहे थे। खास तौर पर औरतों को तो मैंने घर के दरवाजे पर जरूर खड़ा पाया। सभी के मुंह पर लगभग वैसा ही भाव था जो मम्मी के चेहरे पर था।

मैं सोचने लगा कि ये लोग इस तरह उधर क्यों देख रहे हैं? मम्मी अभी तक अविश्वास से ग्रस्त क्या हैं? उससे भी अधिक मम्मी को पहले से ही कैसे पता चल गया कि थाली रेणु दीदी के घर से ही बजाई जा रही है? मेरे पूछते ही तुरंत उन्होंने उनका नाम ही क्यों लिया? क्या मम्मी जानती थी कि रेणु दीदी के घर पर थाली बजने वाली है? ऐसी ही न जाने कितनी बातें दिमाग में उतर आई।

मैं इसी उधेड़बुन में उलझा हुआ था कि नितिन की मम्मी ने हमारी ओर देखकर अपने दरवाजे पर खड़े खड़े ही कहा, "तो आखिर लड़का हो ही गया शर्माजी के।"

'मैं तो पहले ही कह रही थी। सबसे छोटी वाली के सिर पर बालों में भंवर को देखते ही मैंने उनसे कह दिया था कि अगली बार आपके घर थाली बजेगी। आप मिठाई खिला देना।' मम्मी ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा।

चलो किसी तरह उनकी मुराद पूरी हुई। नहीं तो मियाँ-बीवी के बीच झगड़ा ही हो जाता। पिछली बार भी जब तीसरी छोरी हुई थी तो शर्माजी बहुत चिल्लाए थे।"

यह कोई किसी के हाथ में थोड़े ही है। जिसकी जैसी तकदीर होती है वैसा ही होना है। इन मर्दों की यही तो बुरी आदत है। सब कुछ औरत पर थोप देते हैं जैसे उसने कोई दोष किया हो?' मम्मी ने

तनिक मुह बिचकाते हुए कहा।

"हां यह तो है ही। फिर भी बेचारे शर्माजी तो कही के न रहते यदि इस बार भी कोई चुडल ही अवतार ले लेती।" इतना कहते हुए आण्टी भीतर चली गइ।

समय भी ऐसा था कि ये लोग ज्यादा देर तक बतियाना चाहकर भी बतिया नही सकती थी। घर मे सुबह सुबह नहाना धोना, नाश्ता बनाना, बच्चो को स्कूल भेजना, मर्दों को आफिस भेजना रहता है। काम का बोझ कुछ इस कदर रहता कि औरतो को गपशप की वैसी फुरसत नही रहती जैसी दोपहर के समय रहा करती है।

मम्मी भी शीघ्रता से भीतर आ गइ। लेकिन रसोई मे जाने की जगह सीधे स्नानघर जा पहुची। दरवाजा खटखटाकर पापा को भी बुलाने लगी।

नल के चलते रहने के कारण बात को पापा शायद ठीक से समझ नही पाए। यह समझकर कि कोई मिलने वाला आया है और जल्दी मे है इसलिए तौलिया लपेटकर उन्होने दरवाजा खोला और तनिक रुष्ट होकर पूछा, "कम से कम ठीक से नहाने तो दिया करो। ऐसी क्या जल्दी पडी थी कि आदमी को आराम से नहाने भी न दो।"

मम्मी ने उनकी नाराजगी पर ध्यान दिए बिना उत्साहपूर्वक कहा, "शर्माजी के लडका हुआ है।'

'अच्छा ?" पापा अपना गुस्सा भूलते हुए बोले।

मैंने देखा कि आश्चय एव अविश्वास से भरा हुआ वैसा ही भाव पापा के चेहरे पर भी प्रकट हुआ जैसा अभी कुछ देर पहले मेरे द्वारा सूचित किए जाने पर मम्मी के चेहरे पर फैल गया था।

'तुमसे किसने कहा ?" पापा ने भरोसा करने के लिए पूछा।

'अरे भई, थाली जो बज रही है उनके घर पर। मैंने खुद बाहर जाकर देखा है अभी। और तो और बुढिया खुद जोश मे आकर थाली बजा रही है।"

"बजाएगी क्यो नही ? बुढिया के तो प्राण ही इसी भरोसे अटके हुए हैं। पोते का मुह देखने के लिए ही तो जिन्दा है बेचारी।" इतना

कहकर पापा वापस स्नानघर मे चले गए।

मेरे लिए ये सारी बातें रहस्यात्मक ही नही उत्सुकतावर्धक भी हो रही थी। मैं इन बातो से यह तो समझ रहा था कि रेणु दीदी के भाई हुआ है। लेकिन थाली बजाया जाना नितिन की मम्मी का लडका होने पर संतोष जाहिर करना ये सब बातें मायाजाल की तरह प्रतीत हो रही थी। उससे भी बडी बात जो मेरे दिमाग म आई थी वह यह कि आखिर बच्चे पैदा होते कैसे हैं ?

यह विचार मेरे मन मे इससे पहले कभी नही आया हो ऐसी बात नही है। यह कोई आज की घटना से प्रभावित होकर अचानक उदित होने वाला विचार नही था। इससे पहले भी यह बात अनेक बार मेरे दिमाग म आई थी। जब मैं कुत्ते के पिल्लो को या बिल्लिया के बच्चा को देखता था तब भी कई बार मेरी इच्छा होती थी कि मैं मम्मी से पूछकर पता करूँ कि आखिर बच्चे आते कहाँ से हैं ?

एक बार एक कबूतरी ने बैठक के कमरे के रोशनदान म घोसला बना लिया था। कबूतरी को मैं जितनी भी बार उडाता वह लौटकर वही आ जाती थी। एक दिन पापा न टेबिल पर चढकर घोसले को उतार फेंकना चाहा। लेकिन उन्होंने पाया कि उसमे दो अण्डे थे। मम्मी के यह कहने पर कि "उसे मत फेंको, पाप लगेगा पापा ने उसे यो ही रहने दिया था।

मैंने पूछा भी था, "पाप क्यो लगेगा पापा ? अण्डा ही तो है कोई कबूतर का बच्चा थोडे ही है जो पाप लगेगा।'

पापा ने तब समझाया था 'बेटा ! अण्डे म जीव होता है। यदि हम अण्डे को फेंक देंगे तो वह मर जाएगा।"

"तो पापा, ये नितिन और तो अण्डा खाते हैं। उनको पाप नही लगता ?"

लगता ही होगा बेटा ! लेकिन वे लोग इसमे विश्वास नही करते इसलिए खाते हैं अण्डा। मांस भी खाते हैं।"

दूसरे दिन दो कबूतरो के आपस म लडते समय अचानक एक अण्डा नीचे आ गिरा था। टूटे हुए अण्डे मे से पीला-पीला लिजलिजा रस चारों

और बिखर गया। लेकिन उसमे मे न तो कोई जीव ही निकला न उसमे मुझे कबूतर का बच्चा ही दिखाई दिया।

तब भी मेरे मन मे यह प्रश्न आया था कि एक छोटे-से अण्डे मे इतना बडा कबूतर कैसे आ जाता है ? लेकिन यह प्रश्न क्षण विशप के लिए उदित होकर शीघ्र ही तिरोहित हो जाते थे।

आज जब शर्माजी के यहा बच्चा पैदा हुआ तो मैं अपनी जिज्ञासा नही रोक पाया। सारी बातें जानने के इरादे से मम्मी स जाकर पूछा, "बताओ ना मम्मी, रेणु दीदी थाली क्यो बजा रही थी ?"

"उसके भाई हुआ है न इसलिए खुशी म बजा रही है थाली। मम्मी ने समझाया।"

तो थाली क्यो बजाते हैं ?"

"कहा न मैंने, खुशी होती है इसलिए बजाते है।"

"खुशी तो और भी होती है तब तो नही बजाते थाली ? राजू मामा की शादी हुई थी तब तो नही बजाई थी आपने ?"

"नही सिफ लडका पैदा होता है तभी बजाते हैं।"

"लडकी होती है तब क्यो नही बजाते ?" मैंने फिर पूछा।

"नही बजात। ऐसा ही रिवाज है। लडके के पदा होने पर खुशी मनाई जाती है। लडकी के लिए नही। इत्ती सी बात है बस।"

इस बार मम्मी की आवाज तनिक खीज के साथ प्रकट हुई। मैं एक क्षण के लिए सहम गया। फिर भी हिम्मत करके पूछ लिया, "मम्मी ये बच्चे पैदा कैसे होत है ?"

मम्मी मुझसे इस प्रश्न की आशा नही कर रही थीं। थाली बजान और खुशी मनाने के सदभ से मैं बच्चे पैदा होन की बात तक पहुँच जाऊँगा ऐसा उन्होने नही सोचा था। इसलिए काम मे लगे हुए उनके हाथ एकाएक रुक गए। बडी गहरी नजरो स उन्होंने मुझे घूरा और इस बात का आभास पाना चाहा कि मैं यह प्रश्न क्या पूछ रहा हूँ। मैं सायास यह बात उठा रहा हूँ या अनायास। कही मेरे मन मे इस बात को लेकर कोई गम्भीर ग्रंथि तो नही है ?

लेकिन मेरे चेहरे पर मौजद सहज भोलेपन को देखकर उन्होंने अपना

काय करला चालू कर दिया। फिर मेरे प्रश्न को टालने के अदाज मे जवाब देने की जगह मुझसे ही पूछ लिया, "किसने कहा तुझसे कि बच्चे पैदा होते हैं ?"

"अभी अभी आप ही तो नितिन की मम्मी से कह रही थी। पापा को भी कहा था न आपने कि शर्माजी के लडका हुआ है।" मैंने स्पष्टीकरण दिया।

"नही रे ! वो तो हम लोग या ही बात कर रहे थे।"

"फिर बच्चे कहाँ से आते है ? बताओ न मम्मी ?"

"आते कहाँ से हैं। अस्पताल से आते हैं।"

"अस्पताल से कैसे आ जाते हैं ? वहाँ पर बनते हैं क्या ?"

"हाँ ! वहा पर ही तो बनते हैं। जिनको जरूरत होती है माँग लाते हैं वहाँ से।" मम्मी ने मेरी बात से ही जसे जवाब पाते हुए कहा। वरना मैंने महसूस किया कि मम्मी के पास मेरी बातो के लिए कोई ठोस जवाब नही है। या फिर वे प्रसग को जान बूझकर टालती जा रही हैं।

"मम्मी ! तो क्या मैं भी अस्पताल मे ही बना हुआ हूँ ?" मैंने ताज्जुब करते हुए पूछा।

"और नही तो क्या ?" मम्मी न हौले से मुस्कराते हुए कहा।

"फिर आपने जाकर क्या कहा उनसे ?"

"मैंने कहा, हम एक प्यारा-सा सुन्दर-सुन्दर सा बच्चा दो। उन्होन दे दिया और हमारे घर म यह राजा बेटा आ गया।" ऐसा कहते हुए वे ममता से विभोर हो उठी। उसी भावदशा मे मम्मी ने अपने दोनो हाथो मे मेरा मुह पकडकर मुझे वात्सल्य भरा प्यार दिया। मेरे इस प्रश्न स वे अभिभूत हो गई थी और मेरे प्रति तीव्र स्नह का भाव उनके भीतर से उमड रहा था। मैंने उनके हाथ हटाते हुए फिर पूछा, "मम्मी, तो आपने भी थाली बजाई थी मेरे आने पर ?"

"धत !" इस बार मम्मी शरमा गई थी। फिर सहज होकर जवाब दिया "मैंने थोडे ही बजाई थी। तरे पापा ने बजाई थी। मिठाई भी बाँटी थी। लोगो का पार्टी भी दी थी। तरे आन पर बहुत

खुश हुए थे तेरे पापा।" उस सारे प्रसग को याद करते हुए मम्मी ने कहा।

"आपने क्यो नही बजाई थी थाली मम्मी ? आपको खुशी नहीं हुई थी मेरे आने से ?"

'मूख कही का ! अरे औरतें भी कही बजाती हैं थाली-वाली। आदमियो का ही काम है सो वे ही बजाते हैं।"

"पर अभी रेणु दीदी की दादी तो बजा रही थी।"

"वा तो बुड्ढी हो गई हैं। वे तो बजा सकती हैं। उसकी माँ ने थोडे ही बजायी थी, वो तो बीमार पडी हैं।"

"क्यो बीमार हो गईं वे ? कल तक तो ठीक थी।"

"पर रात को बीमार हो गइ अचानक। उन्हे अस्पताल ले गए थे। तब उन्हे लडका मिला। अब वे बीमार हैं अस्पताल मे ही।"

"तो क्या जब मैं पैदा हुआ था तब आप भी बीमार पडी थी मम्मी ?"

"और नही तो क्या ? राजा बेटा कोई यो ही मिल जाता है किसी को ?" मम्मी ने लाड से कहा और एक बार पुन अपने म ही खो गईं जैसे बीते हुए उस क्षण को एक बार फिर से तरोताजा कर लेना चाहती हो।

"मम्मी क्या लडकी होती है तब भी बीमार पडना पडता है ?"

"हाँ, तब भी बीमार पडना पडता है।"

"औरतों को ही क्यो मम्मी ?"

"अब तुझ क्या मतलब।" मम्मी ने खीजकर कहा। लगा, जैसे वे इन बातो स ऊब गई हैं। या जान-बूझकर मुझसे इस सम्ब म बातें नही करना चाहती। इसलिए मुझे डाटत हुए से कहा, 'तुझे जानकर क्या करना है कि बच्चे पैदा कैस होत है ? औरतें बीमार क्यो पडती हैं ? उल्टी बातो मे तो तेरा इतना जी लगता है। पढाई लिखाई रत्ती-भर नही होती। चलो, जाकर पढाई करो।" और हाथ पकडकर मुझे हौले से परे ढकेल दिया।

मुझे बुरा लगा। किंतु अपमानित-सा महसूस करते हु ...

मे आकर मैं वही का वही खडा रहा ।

अब जब तक सच्ची सच्ची बात नही बता दोगी तब तक देख लेना मैं भी आपको अपने स्कूल की बातें नही बतलाऊँगा । खुद तो सब पूछ लेती है । हम पूछते हैं ता डाँट देती हैं । नही जाऊँगा मैं।" मैंने तनिक हठ करते हुए रोषपूवक कहा ।

"मत बतलाना । ' कहते हुए मम्मी ने उपेक्षा स मुझे एक बार पुन धकेल दिया ।

यद्यपि मम्मी न पीटा तो नही था लेकिन यह सब पीटने जसा ही था। मुझे बहुत बुरा लगा । बच्चा पदा होने की बात को लेकर खुद को तो इतना जोश आया कि जाकर पापा से भी कह दिया । उनके स्नान करने तक का इतजार नही किया । अब जरा मैंने पूछ लिया तो डाटते हुए कह दिया, ' जाओ, जाकर पढाई करो ।" यही तो बुरी आदत है मम्मी-पापा की । बात-बात म डाँटन, पीटन लगत हैं।

साथ ही यह भी महसूस हुआ कि य सारी बातें मम्मी के अपने बचाव के तरीके हैं । जब जवाब देत नही बना तो बात बदल दी और चट से पढाई का बहाना बना दिया । इसलिए रूठकर भी मैं वही खडा रहा। चुपचाप मम्मी को काम करते हुए देखता रहा ।

मम्मी के हाथ यन्त्रचालित स काय कर रह थ । वे एक स अधिक काम एकसाथ निपटान म लगी हुई थी ।

मैं खडा-खडा सोचने लगा कि मम्मी भी तो कई बार बीमार पडती है । कभी सिर मे दद होता है तो कभी बुखार । पिछली बार तो इतनी बीमार पडी थी कि डाक्टर को भी बुलाना पडा था। पापा खुद भाग-भागकर उनक लिए दवाइयाँ लाए थ । मोसमी का जूस निकालकर पिलात थे । खिचडी बनाकर खिलात थे। अस्पताल भी ले जाना पडा था एक दिन तो मम्मी को। पर मम्मी तो कोई बच्चा लेकर नही आई अपन साथ ?

शायद उस समय कोई बच्चा तैयार नही होगा अस्पताल मे । या फिर माँगा ही नहीं होगा मम्मी ने । माँगना मम्मी को वैस भी अच्छा नही लगता । पापा को तो बिल्कुल नही ।

घर मे किसी चीज के खत्म हो जाने से जब काम रुक जाता है तब मम्मी तो फिर भी यदा कदा मुझे पडोस म भेज देती हैं कि "जा, भागकर शर्मा आण्टी से एक कटोरी चीनी ले आ" या 'उनके घर से एक बोतल केरोसिन तो ले आ।"

पडोस के बच्चे भी ऐसी ही छोटी मोटी चीजें लेने हमारे घर आते रहत है। इसलिए हाथ रुक जाने पर मम्मी तो फिर भी सकोच को छाडकर दूसरो से चीजें माग लेती है। लेकिन पापा इस आदत के सख्त विरोधी है। वे इतने स्वाभिमानी है कि दूसरो से कुछ भी मागना पस द नही करत।

उस दिन चित्र बनाते समय मुझे ध्यान आया कि मेरा रबर कही खो गया है। चित्र दुरुस्त करने के लिए मुझे रबर की जरूरत पडी तो मैंने नितिन से मागकर लाना चाहा। मम्मी न तो हामी भर दी थी पर पापा को मालूम पडते ही उ्होन उसी समय डाँट दिया। मुझे हठ करता देखकर गुस्से स एक चाटा भी मार दिया था कि 'कोई जरूरत नही है दूसरो से माँगने की। खुद की चीजें तो ठीक से रखत नही और मँगतो की तरह दूसरा स माँगते फिरते हैं।"

उस दिन मेरा वह चित्र अधूरा ही रहा था और बहिनजी ने मेरी डायरी म लिख दिया था, 'काम पूरा नही किया।"

पापा को यह सब स्वीकाय है पर यह उ ह कतई मजूर नही है कि अपन लिए दूसरो के सामने हाथ पसारा जाय।

शायद इसीलिए अस्पताल जाकर भी मम्मी ने उनसे कोई बच्चा नही माँगा हागा। या मम्मी ने हिम्मत भी की हागी तो पापा ने मना कर दिया होगा कि ' नही, कोई जरूरत नही है बच्चा वच्चा माँगने की।" डरकर मम्मी ने माँगा नही होगा बच्चा।

पर मुझे भी तो आखिर माँगकर ही लाए हागे अस्पताल स। बीच म ही मुझ अचानक ख्याल आया। मुझे फिर कैसे माँगा होगा ? तब पापा कैसे तयार हो गए होंगे ?

कुछ समझ मे नही आया।

लेकिन इतना ख्याल जरूर आया कि आज मेरे भी छोटा-सा भाई

होता तो मैं भी जोर-जोर से थाली पीटता। जो कोई पूछता उसे अकड़कर कहता, "पता नहीं है ? मेरे भाई हुआ है। कोई साधारण बात थोड़े ही है।"

उसे गोद में लेने में भी कितना मजा आता। हाथ-पांव हिला हिलाकर वह किलकारियाँ भरता तो कितना आनन्द आता। पर जाने क्यों मम्मी-पापा अस्पताल जाकर माँगते ही नहीं ? खुद के तो जो भी मन में आता है चट से लाएँगे। मेरी इच्छा होने पर ध्यान ही नहीं देंगे। ज्यादा जिद् कर लो तो डाँट देंगे या पीट देंगे। पर यह नहीं होगा कि मेरी इच्छा को पूरा कर दें। और मूड में होगा तो खुद ही कोई चीज खरीद लाएँगे। कहेंगे, "लो पप्पू ! तुम्हारे लिए लाए हैं।" भले ही उसकी मुझे जरूरत ही न हो।

इस सम्बन्ध में मम्मी से पूछ लेना ही बेहतर समझा। और हिम्मत करके पूछ ही लिया, मम्मी, अपने घर भी छोटा बच्चा क्यों नहीं लाते आप अस्पताल से ?"

मम्मी इतनी देर में भूल चुकी थी कि अभी कुछ क्षणों पूर्व ही उन्होंने झिड़ककर मुझे पढ़ने के लिए कहा था। मैं आशंकित था कि कहीं मम्मी दुबारा नाराज होकर डाँट ही न दें। आवेश में आकर कहीं थप्पड़ ही न लगा दें।

लेकिन मेरी आशाओं के प्रतिकूल यह बात मम्मी को बहुत ही भाई थी। डाँटने या फटकारने की जगह मम्मी मेरी बात को सुनकर प्रसन्न हो गईं। और ममता से भरकर मुझे दुलारते हुए उन्होंने पूछा 'क्यों रे ? तुझे भी छोटे बच्चे की आवश्यकता है क्या घर में ?"

मेरे द्वारा स्वीकारे जाने पर फिर पूछा, 'भाई चाहिए या बहिन ?"

उनकी बातों से मेरा भय एकाएक दूर हो गया। उत्साहित होते हुए मैंने कहा 'मुझे तो भाई की जरूरत है मम्मी।"

'क्यों रे बहिन क्यों नहीं चाहता तू ?" मम्मी ने फिर पूछा।

'नहीं मम्मी ! भाई होगा तो मैं भी थाली बजाऊँगा। सबको बताऊँगा।

— 'उससे क्या होता है ? थाली तो तू सिर्फ एक ही बार बजाएगा।

बहिन होगी तो तेरे हर साल राखी जो बाँधगी।" मम्मी ने तेजी से मेरी बात काटते हुए आगे कहा, 'पिछले साल भी तो राखी के दिन तू रोने लगा था। बहिन होगी तो फिर तुझे यों दुःखी तो नहीं होना पड़ेगा?"

"हुंह! राखी का क्या है? बाँधी तो थी आपने। और बाँध देना आप। नहीं तो रेणु दीदी से बंधवा लूँगा राखी। पर छोटा भाई होगा तो मैं उसके साथ क्रिकेट खेलूँगा। वो गेंद फेंकेगा और मैं चौके छक्के लगाऊँगा।"

"क्या बहिन होगी तो वो कौन-सी गेंद नहीं फेंकेगी?"

"हूँ! लड़कियाँ भी कहीं क्रिकेट खेलती हैं? वे तो रस्सी कूदती हैं या घर-घर मकान का खेल खेलती हैं। ये भी कोई खेल हैं? मुझे तो बिल्कुल पसन्द नहीं। क्रिकेट खेलने में या पतंग उड़ाने में जो मजे हैं वे इन गिट्टी से खेलों में कहाँ? पतंग उड़ाते समय लटाई पकड़ने वाला भी तो कोई चाहिए। मुझे तो मम्मी, बस, छोटा भाई ही चाहिए।"

इसी समय पापा स्नानघर से बाहर निकले।

मुझे पता है पापा इस समय सीधे जाकर भगवान को हाथ जोड़ेंगे। उनके आगे अगरबत्ती जलाएंगे। गायत्री मंत्र का पाठ करेंगे। और "श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुण' बोलते न बोलते वहाँ से चल देंगे। और चाय की पुकार लगाते हुए रसोईघर के भीतर घुसे चले आवेंगे।

मम्मी पर आरोप सा लगाते हुए कहेंगे, "आठ बजने को आए हैं और तुम हो कि अभी तक चाय के प्याले तक का बन्दोबस्त नहीं कर पाई हो। इसीलिए तो मुझे दफ्तर की देरी हो जाती है रोजाना।"

मम्मी झूठी नाराजगी दिखलाते हुए पहिले तो तुनकेंगी, 'खुद ही तो देरी से उठते हैं और दोष मेरे कामों में ढूंढते हैं। सुबह उठाती हूँ तो कहेंगे आराम से सोने भी नहीं देती। नहीं उठाओ तो यों आरोप लगाएँगे।"

फिर उनका नकली गुस्सा दूर हो जाएगा और पापा की इसी आदत पर न्यौछावर सी होती हुई उन्हें चाय का प्याला पकड़ा देंगी।

"सुनो जी ! आपका लाल क्या कह रहा है ?" आज मम्मी ने पहिले से ही पापा को आवाज देते हुए कहा।

मैं बुरी तरह से शरमा गया। मुझे इस बात की बिल्कुल आशा नहीं थी कि बात का मम्मी मजाक बनाकर इस तरह पापा के सामने उठाएँगी। कुछ-कुछ डर भी गया मैं। याद आया कि माँगने की बात से पापा नाराज हो जाते हैं। उस दिन का रबड़ वाला किस्सा याद आ गया। कहीं फिर एकदम झापड़ ही न मार दें। कान तक सनसना उठते हैं।

मम्मी भी बस कितनी अजीब हैं। हमेशा ऐसी ही उल्टी-सीधी बातें करती रहती हैं। खुद का तो क्या है कुछ भी नहीं जाता। मार तो हम ही खानी पड़ती है।

पापा नाराज होते हैं तो खुद भी बीच-बीच में बोलकर उन्हें उकसाती रहती हैं। तब और भी अधिक मार खानी पड़ती है। अभी खुद ने ही तो बात चलाकर पूछा था कि मुझे भाई की जरूरत है या बहिन की। तब बात क्यों छेड़ी थी जो अब पापा को आवाज देकर बतलाना चाहती हैं ?

डर के साथ-साथ हल्का गुस्सा भी आया मम्मी पर मुझे।

यही कुछ सोच रहा था कि पापा आ पहुचे। आते ही पूछा, "क्या कह रहा है पप्पू ?"

'पूछो इसी से।" मन्द मन्द मुस्कराते हुए मम्मी ने हाथ से पकड़कर मुझे पापा के सामने कर दिया।

पेशी में हाजिर किए गए अबोध मुजरिम की तरह मैं सहमा, शरमाया हुआ-सा पापा के सामने खड़ा हो गया। मुह से लेकिन कोई बोल नहीं फूटा। गर्दन झुकाए हुए मैं चुपचाप खड़ा रहा।

मम्मी ने पुनः कहा, 'कहता क्यों नहीं अब ? शरमाता क्यों है ? अभी मम्मी के सामने तो बढ़ चढ़कर बोल रहा था। अब पापा के सामने चुप क्यों हो गया है ?"

"आखिर बात क्या है ? कुछ पता भी तो चले। क्या छोरे को धमका रही हो यों ? तुम ही बतला दो न कि बात क्या है ?" पापा ने तनिक असंतोष से कहा, "बात तो कहती नहीं तमाशा खड़ा करती रहती हो।" एक क्षण के लिए मम्मी से कुछ भी कहते नहीं बना। फिर

बहुत धीमी सी आवाज मे बोलने लगी। बोल जैसे मुह से सीधे न निकल भीतर गहरे स प्रकट हो रहे है और वे जस हृदय की मूक आवाज को किसी तरह साहस कर वाणी द रही हो। बोली 'आपका लाडला कहता है मुझे एक छोटा सा भाई ला दो अस्पताल से।" ऐसा कहते हुए जाने कैसी निगाहो से पापा की ओर देखने लगी मम्मी। शीघ्र ही उनकी आखे शम से नीचे झुक गइ और उनस न जाने कैसा भाव मूक रूप स प्रकट होकर पापा तक पहुच रहा था।

'तो यो कहो कि मा बेटे मिलकर योजना बना रहे है।" पापा ने जस भेद की बात समझ लेने के अ दाज मे कहा। फिर बोले, 'पप्पू क कधे पर रखकर ब दूक क्यो चला रही हो ? यह क्या समझता है बेचारा। यदि तुम्हारी इच्छा है तो साफ साफ क्यो नही कह दती। बात को पेंच देकर कहने की क्या जरूरत है ?"

"नही, सचमुच यही कह रहा था अभी। पूछ लो भले ही इससे। मैं तो इसकी ही बात कह रही थी आपको।" मम्मी ने पापा को यो गम्भीर होते देखकर सफाइ देने की मुद्रा मे कहा। मुझे लगा, मम्मी इस समय अपने को अपराधी सा महसूस कर रही हैं, और कोई सहारा न पाकर मेरे कथन का झूठा अवलम्ब ग्रहण करना चाहती हैं।

"इसकी कहो या खुद की। बात साफ है। तुम यदि तयार हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? कहो तो पूरी की पूरी फुटबाल की टीम ही खडा कर दें घर म। जो कुछ असुविधा होगी सो तुम्ही को होगी। यदि तुम्हारी इच्छा है तो भला मुझे क्या अपत्ति हो सकती है ? कहो तो आज स ही चालू कर दें कोशिश। बाद म यह मत कहना कि मैंने कोई गलती की है।" कहते हुए पापा ने मम्मी के गाल पर प्यार स चिकोटी भरने क लिए हाथ बढा दिया।

पापा की हमेशा से ऐसी आदत रही है। प्यार स भरकर जैस पापा मेरे गाल पर स्नेह भरा दुलार देत हैं वैसे ही कभी कभी हौले स मम्मी के गाल पर भी दे दिया करते है। मम्मी ने लेकिन तेजी से उनका हाथ झटक दिया और आगे की ओर झुकते हुए पापा को तनिक धकियाते हुए कहा

"चलो हटो जी! आपको तो बस ये ही सूझता रहता है हरदम। बच्चे के सामने भी शरम नहीं करते। क्या करना चाहिए क्या नहीं, इसका जरा सा भी ख्याल नहीं करते।"

'तुम्हीं ने तो बात शुरू की थी। तुम्हीं कह रही हो कि ध्यान नहीं रखता किसी का।" पापा ने तनिक झेंपते हुए सिर्फ कुछ कहने के लिए कहा।

'बात शुरू की थी तो कोई इसलिए थोड़े ही की थी। मर्दों के मुंह से तो हर समय लार टपकती रहती है। जरा सी मलाई दखी और बिल्ली की तरह झट से झपट पड़ते हैं।" मम्मी ने पापा के व्यवहार की तनिक भर्त्सना करते हुए कहा।

"अपने क्या है? तुम्हें नहीं जंचता तो न सही। औरतों की तरह यह तो हमसे होता नहीं कि ना ना भी करते जाओ और मुस्कराते भी जाओ। ये नाटकबाजी ही तो हमसे नहीं होती। बस एक ही बात समझते हैं। हाँ तो हाँ और ना तो ना। यह नहीं हो सकता हमसे कि हाँ चाहते हुए भी ना किए जाएँ या ना चाहते हुए हाँ किए जाएँ।"

"चलो हटो यहाँ से परे। चाय ठण्डी हुई जा रही है। उल्टी बातों से फालतू समय खर्च करने की फुरसत नहीं है मेरे पास। आपका क्या है अभी देरी हो जाएगी तो चट से डाँटने लगेंगे। तब थोड़े ही देखेंगे कि खुद ही के कारण देरी हुई है।" मम्मी ने पापा को एक बार पुनः मीठी झिड़की दी। फिर मेरी ओर देखते हुए कहा

"और तू खड़ा खड़ा क्या दीदे फाड़ रहा है यहाँ? जाकर कपड़े क्यों नहीं पहिनता। स्कूल नहीं जाना तुझे? बस छूट गई तो कौन छोड़ने जाएगा तुझे? इतनी दूर? जा भाग यहाँ से।

यही तो खराब आदत है मम्मी की। बात बेबात में टोकती रहती हैं। जब जवाब देते नहीं बनता तो चट से बात बदल देती हैं।

मैं कौन-सा अपने आप जाकर वहाँ खड़ा हुआ था। खुद ने ही हाथ पकड़कर खड़ा किया था मुझे पापा के सामने। जब पापा ने कुछ कह दिया तो मुझे क्यों डाँट रही हैं? यह भी कोई बात हुई कि पापा पर जोर न चले तो मुझे डाँट दो। छोटा हूँ तो क्या? इसलिए थोड़े ही हूँ कि जब

मन मरजी आए फटकार दो। पीट दो।

मम्मी पापा जब आपस म नोक झोक कर रहे थे तब मैं विस्मित रह गया था। वहाँ तो मैं सोच रहा था कि बच्चा माँगने की बात सुनकर पापा मुझे पीट देंगे। कहा दोना खुश होकर अजीब तरह की बातें करने लगे। बातें मेरी समझ म नही आइ कि फुटवाल की टीम खडी करन से पापा का क्या मतलब था या मलाई की तरफ झपटने की बात से मम्मी का क्या ? मैं उन्ह समझन की उधडबुन म लगा हुआ था कि मम्मी न अकारण डाट दिया। मैं अपमानित सा दूसरे कमरे मे जाकर स्कूल जाने की तयारी करन लगा।

बात लकिन दिमाग से गई नही। न कुछ समझ म ही आई। मम्मी कहती है बच्चे अस्पताल से मिलते है। यदि यही बात है तो फिर हर कोई क्यो नही ले आता वहा स। विलास अकल के ही कहाँ है ? और नितिन की मौसी के कितने सारे बच्चे हैं। पिछली बार जब व आई थी तो सारा घर भर गया था उनका। पूर छै बच्चे थे उनके।

रेणु दीदी की दादी को ही लो न। कितनी खुश हो रही थी। इतनी ही जरूरत थी ता पहिल ही जाकर ले आती एक बच्चा अस्पताल से। पैदल नही जा सकती थी तो तागे म चली जाती। पापा अभी कह भी तो रहे थे कि कब्र मे पैर दिये बठी है बुढिया। इतनी उतावली थी तो फिर इतन दिनो तक बैठी क्या रही ? रेणु दीदी भी तो थाली पीट रही थी जोर-जार स, क्या नहीं जाकर ल आई भाई अपने लिए ?

फिर अचानक ख्याल आया कि यदि बच्चे अस्पताल से ही मिलते है तो यदि मैं भी जाकर मागू तो क्या वे दे देंगे मुझे छोटा भाई ? लेकिन जाऊ कैस ? फिर सोचा, किसी दिन पैर म चोट लगी तो घर पर कह दूगा अस्पताल से पट्टी बँधवाकर आता हूँ। क्या है ? कोई ज्यादा दूर तो है नही। स्कूल के पास वाले चौराहे स ही तो जाती है सडक अस्पताल का।

पर जाकर कहूँगा क्या उनसे ? कही उन्होने डाँट दिया तो या घर पर आकर पापा स शिकायत कर दी तो ? ना बाबा ना, मैं खुद तो नही माँगूगा उनसे।

वहाँ जाने पर यदि अस्पताल वाला न मुझे भाई दे भी दिया तो इतनी दूर तक कैसे उठाकर लाऊँगा उसे ? बस्ता भी कितनी मुश्किल से उठाकर चल पाता हूँ मैं अपना। फिर बच्चे को उठाकर लाना तो कितना कठिन होगा ?

वैसे भी कितने पिलपिले से होते हैं छोटे बच्चे ? गर्दन तो लुढ़कती रहती है इधर-उधर।

यदि कहीं हाथ से छूटकर नीचे गिर गया तो ?

या पुलिस वाले ने ही देख लिया तो ? यदि उसने पूछा कि बच्चे को कहाँ से चुराकर लाया है ? तो क्या जवाब दूँगा उसे ? कैसे बताऊँगा कि यह मेरा भाई है ? हाँ, शक्ल भी तो मिलनी चाहिए मुझसे। सारे बच्चों की शक्ल, रंग रूप कितना मिलता है अपने मम्मी पापा से ?

विजय के मम्मी पापा दोनों गोरे रंग के हैं तभी तो वह भी गोरा है ? और गोपाल ? तवे जैसा काला। उसके पापा भी तो कैसे काले कलूटे हैं !

मुझको भी तो सारी आण्टियाँ कहती हैं कि मैं पूरा का पूरा मम्मी पर गया हूँ। जब भी औरतों में बात चलती है सभी कहती हैं 'पप्पू तो बिल्कुल माँ पर गया है। एकदम माँ की शक्ल लगती है इसकी।"

रेणु दीदी की दादी तो सदैव कहा करती हैं, "देख लेना पप्पू की मम्मी ! तेरा छोरा तकदीर वाला होगा। माँ पर जो छोरा पड़ जाता है वो बोहत आगे बढ़ जाता है। होना भी यही चाहिए छोरा माँ पर और छोरी बाप पर।"

जब पुलिस वाला पूछेगा तो फिर कैसे कहूँगा कि देखो इसकी शक्ल मुझसे मिलती जुलती है। यदि कहीं पकड़कर उसने मुझे जेल में ही डाल दिया तो ? फिर पापा को कैसे पता चलेगा कि मैं जेल में हूँ और यदि पता चल भी गया तो चोरी की बात सुनते ही पापा खुद कितने नाराज होंगे ? कितनी पिटाई होगी तब ?

मैं इसी उधेड़बुन में व्यस्त था कि इसी समय बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया। मैंने जाकर दरवाजा खोला तो देखा रेणु दीदी खड़ी हैं। हँसती हुई खुश खुश। हाथ में मिठाई के बहुत सारे लिफाफे

लिए हुए। भीतर आकर एक लिफाफा देते हुए उन्होने मम्मी से कहा, 'आण्टी! आपको मेरी मम्मी ने बुलाया है। अभी।"

"क्यो कैसी तबियत है री तेरी मम्मी की अब?" मम्मी ने उत्सुकता से भरकर पूछा।

'ठीक है आण्टी।

तूने देखा है अपने भाई को? कैसा है वह? ठीक तो है न बिल्कुल?'

एकसाथ कई प्रश्न पूछ डाले मम्मी ने।

हाँ आण्टी बिलकुल ठीक है वह। एकदम गोरा है।'

"तूने कहाँ देख लिया उसे? अस्पताल गई थी क्या तू?" मम्मी ने तनिक आश्चर्य से पूछा।

नही आण्टी, घर पर ही हैं मम्मी तो। दादीजी की जिद के कारण घर पर ही रखा उन्हे। उनको किसी ने वहम में डाल दिया कि शनिवार को अस्पताल जाना अशुभ है। रात को मम्मी की तबियत बिगडने लगी तो दादीजी ने हठ कर लिया, 'भले ही कुछ हो जाए पर बारह बजे बाद शनिवार शुरू हो गया है। इसलिए मैं तो अपनी बहू को अब हर्गिज अस्पताल नहीं जाने दूगी।' पापा ने हारकर तब दाई को बुलाया था।'

"तो घर पर ही हुआ तेरा भाई।" मम्मी ने फिर पूछा।

"हा आण्टी! सारी रात हम लोग जागते ही रहे। सभी घबरा रहे थे। किसी को नीद नही आई। सुबह कही जाकर पैदा हुआ। मम्मी ने रात को ही भगवान का प्रसाद बोल दिया था। उसी के तो लड्डू है ये।'

"बहुत खुशी हुई भई हमे भी।' मम्मी ने बिलकुल औपचारिक ढग से कहा, 'चलो तुम्हारी मम्मी की सारी चिंताएँ मिटी। वे तो बेचारी बहुत परेशान थी। पहले से ही तुम तीन-तीन छोरिया थी। कही और हो जाती तो मुश्किल हो जाती।'

मैं तो खुद भाई चाहती थी आण्टी। हम लडकियो का तो क्या है? थोडे ही सालो मे चली जाएँगी। फिर भला मम्मी पापा की देख-

भाल कौन करता ? मैंने तो अलग से प्रसाद बोला है भगवान को। छठी के दिन भाई को खीर चटाकर मैं तो बताशे बाटूंगी सबको।'

"तू तो अभी से ही बड़ी बड़ी बातें करने लगी है री ? अभी क्या है दसवीं मे ही तो पहुंची है ? बातें बड़ी बूढ़िया जैसी करने लगी है।'

"अपने-आप समझ आ जाती है आण्टी ! अपने को गफलत में रखो तो दु ख ही पाओ। वरना जो हकीकत है सो तो है ही।"

फिर जल्दी से कहा अच्छा आण्टी, मैं जाती हू अभी तो। कितना काम पड़ा है घर म। आप जरूर आना—मम्मी ने कहलाया है। आपको खूब मानती हैं मम्मी। आपने ही तो कहा था कि मेरे भाई होगा सो आपका कहा सच निकला। दूसरी औरतें तो मुंह पर कुछ और पीठ पीछे कुछ कहती रहती हैं। आण्टी भूलना नहीं आप जरूर आना अभी।' यो कहते हुए रेणु दीदी चली गई तेजी से।

झूठ झूठ, कितना बड़ा झूठ। मम्मी कितनी झूठी हैं। कहती हैं बच्चा अस्पताल से मिलता है। फिर रेणु दीदी का भाई घर पर ही कैसे आ गया ? खुद ही तो कहती हैं, "झूठ बोलते तो भगवान पाप देता है। फिर उसे नरक मे जाना पड़ता है। अब खुद झूठ बोल रही हैं तो पाप नहीं लगता ? भगवान क्या बड़ों का पाप नहीं देखता ?

पापा तो और भी ज्यादा झूठ बोलते हैं। जब वे जटाशंकर जी मिलने आते हैं तो उन्हें दूर से आता हुआ देखकर खुद तो कमरे में बैठ जाते हैं और मुझसे कहते हैं "जा, कह दे पापा घर में नहीं हैं।' अब पाप लगेगा तो हमको ही लगेगा।

यदि ऐसे समय कह दूं कि पापा, आप मिलते क्यों नहीं उनसे, तो झट से डांट देंगे, "जीभ निकालना सीख गया है। यह तो होता नहीं कि बड़े लोगों का कहना मान जाएँ। सामने बोलने लगे हैं ये अब। तुझे क्या मतलब कि मैं उनसे क्यों नहीं मिलता ? इतनी-सी तमीज नहीं है कि फालतू बातों में टाँग न अड़ाएँ।'

आज जब मम्मी की पोल खुल गई तो लगा, ये लोग खुद कितने झूठे हैं। मुझे कहते हैं हमेशा सच बोलना चाहिए। सब तो उपदेश देते रहेंगे। खुद भले ही चाहे जितना झूठ बोल लें।

मैं अभी यह सोच ही रहा था कि मम्मी रेणु दीदी के यहाँ जाने के लिए तयारी करने लगी। घर के काम उन्होंने फटाफट निवटा दिए। जल्दी से नाश्ता तैयार कर सबको खिला दिया। फिर उतावली मे साड़ी पहिनने लगी।

मम्मी को बाहर जाना हुआ देखकर मेरा मन भी उनके साथ जाने के लिए मचल उठा। उनके पीछे पीछे मैं घर में घिसटने लगा। इससे उनके कार्यों में विघ्न पड़ता। वे खीझकर मुझे धकेल देती या डाँटते हुए हल्के से पर धकिया देती। लेकिन मैंने अपना हठ न छोड़ा।

मम्मी-पापा के ऐसे उतावलेपन का मैं अक्सर लाभ ले लिया करता हूँ। अचानक बने प्रोग्राम के कारण जब वे अत्यत उतावली मे तैयारी करने लगते तब अक्सर ही मैं उनके साथ जाने के लिए जिद कर बैठता हूँ। ये ऐसे अवसर होते है कि वे अपनी जल्दबाजी के कारण धैर्यपूर्वक रुककर मुझे समझाने फुसलाने का समय नहीं निकाल पाते। *तब या तो वे मुझे भी अपने साथ बाहर ले जाते हैं या फिर मेरी सारी* मांगो का पूरा करने के बाद ही बाहर जा पाते है।

आज जब रेणु दीदी के घर जाने के लिए मम्मी यो तैयारी करने लगी तो मैंने भी साथ जाने के लिए हठ कर लिया। मम्मी ने कहा, 'तुझे स्कूल जाना है। तू क्या करेगा वहां ? बस, मैं तो अभी गई और अभी आई। वहा कोई शादी ब्याह तो है नही कि तेरा मन लग जाएगा।" लेकिन मैंने जिद न छोड़ी।

खीझकर तब मम्मी ने पापा को आवाज दी "अजी ! सुनिए, इसे जरा समझाओ ना। यह वहाँ जाने की जिद कर रहा है। वहाँ क्या करेगा भला यह ?"

पापा को खुद दफ्तर जाने की जल्दी थी। इसलिए हाथ झटकते हुए कहा 'तुम खुद ही ऐसे गलत समय पर जा रही हो ? इसे रवाना करके फिर चली जाती।

लेकिन मैं क्या करूँ ? आपके सामने ही तो रेणु कह गई थी कि अभी ही बुलाया है। नहीं जाऊँगी तो कितना बुरा लगेगा। सोचेंगी पप्पू की मम्मी को भी मिजाज आ गया है। बस बस मैं गई और आई।

ज्यादा देर नहीं ठहरूँगी वहा पर । आप जरा फुसलाकर इसे अपने पास रख लीजिए ना ।" मम्मी ने फुसलाते हुए से पापा से कहा ।

"ना भाई ना । अपने तो आफिस का समय हो रहा है । आज एक जरूरी मिटिंग है । कलेक्टर भी आएगा वहा । देरी से पहुँचा तो सफाई देना मुश्किल हो जाएगा ।" पापा ने साफ साफ कहा ।

'तो फिर एक अकेली मैं ही पचती रहूँ सब जगह ।" मम्मी ने तनिक नाराजगी से कहा, "घर के सारे काम-काजा मे खटते रहो । दो घडी के लिए भी चैन नही । मन मरजी से कोई कैसे कर ले काम इस घर मे ? बस, नौकरो की तरह खटते रहो यहाँ पर ।" फिर मुझे खीच-कर आगे धकेलते हुए गुस्से मे कहा

"चल मर ।'

मेरी आखें डबडबा आईं । उनके कारण अन्ततोगत्वा मम्मी को हथियार डाल देने पडे ।

घर से बाहर निकलते समय मैं मम्मी के साथ था । मेरी आँखो मे तब भी आँसू भरे हुए थे । लेकिन थोडी दूर जाने पर मैंने कमीज की बाहा से उन्हे पोछ लिया । और डाँट की सारी पीडा भूल गया । मेरा मनचीता जो हो गया था ।

रेणु दीदी के घर पर बहुत भीड हो गई थी । ज्यादातर तो उनके रिश्तदार ही थे । वे लोग रेणु दीदी की दादी जी को बधाई दे रहे थे । आगन मे एक कोने मे जाने कहाँ से आकर हिजडे आ बैठे थे और ढोलक की थाप के साथ भद्दे ढग से तालियाँ बजाते हुए गीत गा रहे थे । द्वार पर मेहतरानी अलग चीख रही थी । घर मे प्राय औरतो का ही जमघट था । आदमी मुझे कोई नही दिखाई दिया । यहाँ तक कि रेणु दीदी के पापा भी मुझे वहा पर दिखलाई नहीं दिए ।

मुझे मम्मी के साथ उस कमरे मे नही जाने दिया गया जिसमे आण्टी बीमार लेटी थी । उधर से एक अजीब किस्म की बदबू भी आ रही थी । जिससे मेरा जी मितलाने लगा । मैं रेणु दीदी की छोटी बहिनो के साथ छत पर खेलने चला गया ।

रेणु दीदी के दो छोटी बहिनें थी—माया और सीता । माया मुझसे

दो कक्षाएँ आगे थी और सीता तो बहुत छोटी थी। उसने तो इसी वर्ष पहली कक्षा मे प्रवेश लिया था। कितनी ही देर तक हम खेलते रहे फिर थककर बैठ गए और इधर उधर की बातें करने लगे। माया ने मुझ पर तनिक रोब जमाने के लिए कहा, 'देख लेना, मेरी मम्मी जब ठीक होगी तब मैं इस बार सलवार-कुर्ता सिलवाऊँगी। पापा से भी खूब सारे खिलौने लूगी।

"आज क्यो नही ले लेती तू खिलौने ?" मैंने पूछा।

"अभी कहा से दिलाएँगी मम्मी ये सारी चीजें। अभी उनके बच्चा जो हुआ है।"

"बच्चा होता थोड़े ही है। उसे तो अस्पताल से लेकर आते हैं।" मैंने भोलेपन से कहा।

हुह !' माया ने मेरी नासमझी पर हँसते हुए कहा "तुझे इत्ती-सी बात भी मालूम नही। कितना मूरख है तू ! बच्चा तो मा के पेट से ही निकलता है। जानवरो को बच्चे पैदा करते हुए तू नही देखता है ?"

मुझे याद आया कि कुछ दिनो पहले हमारा ग्वाला दूध लेकर नही आया था। नाश्ते के समय तक भी जब वह नही आया तो मम्मी ने मुझे उसके घर दूध लेने भेजा था। हमारे घर के पीछे ही तो था उसका घर। रास्ता लेकिन मोहल्ले की नुक्कड से घूमकर जाता था। मैं जब उसके घर पहुचा तो वह अपनी गाय के पेट मे से बच्चे को खीचकर निकाल रहा था। पहिले उसके आगे के दो पैर निकले फिर सिर और सारा शरीर। बडी ही प्यारी बछिया थी। एकदम सफेद और ललाट पर छोटा-सा काला तिलक।

तो क्या बच्चे ऐसे ही मा के पेट मे से निकलते है ? यह सोचते हुए मैंने माया से पूछा, 'तेरा भाई भी तेरी मम्मी के पेट मे से निकला है ?' "और नही ता क्या ?' उसने लापरवाही से जवाब दिया। कैसे निकालते हैं पेट मे से उनको ? मैंने फिर पूछा ता बोली, 'पेट चीर-कर निकालते हैं, तुझे इतना भी मालूम नही ?" फिर कहा, तू तो बिलकुल मूख है।" और मुझे चिढाने लगी। 'पप्पू मूरख है, पप्पू मूरख

है ।" बोलते-बोलते नचने लगी।

मैं अपमानित होकर नीचे चला आया। गुस्से से भरा हुआ मम्मी के पास जा पहुचा और उनका आंचल पकडकर उनसे घर चलने की जिद करने लगा।

उस भीड म मम्मी भी शायद ऊब रही थी। इसलिए मेरे द्वारा घर चलने की जिद शुरू करते ही व भी उठ गईं और चल पडी।

जब तक हम घर लौटे तब तक मेरी बस जा चुकी थी। पापा भी दफ्तर चले गए थे और अनायास ही मेरी छुट्टी हो गई।

मैंने मम्मी से कहा, 'मम्मी ! आप कितनी झूठी हो। रेणु दीदी का भाई तो घर पर ही हुआ है। अस्पताल स कहाँ आया है ?"

मम्मी ने इस बात को गम्भीरता से नही लिया और बस इतना ही कहा कि, 'नही रे, तुझे किसी ने झूठ मूठ ही कह दिया है। फिर बात बदल दी। मैंने याद करते हुए कहा, 'मम्मी ! हमारी किताब मे भी तो लिखा हुआ है कि सजीव अपने जस प्रतिरूप पैदा करते हैं। निर्जीव नही। जीव प्रजनन के द्वारा सन्तानोत्पत्ति करते हैं। पक्षी अडे देते हैं तो पशु अपने जैसा जीव पैदा करते है।'

'वो तो यूही लिखा हुआ है। किताब लिखने वालों का क्या है ? कुछ भी लिख देते हैं।" मम्मी ने अपना काम करत करते हुए उपेक्षा भाव से फिर कहा।

"यूही कैसे लिखा हुआ है। किताब भी कोई गलत बात कहती है। बहिन जी खुद कहती है कि किताब मे गलत लिखा हुआ नही होता।"

"अच्छा बाबा तू भी सही तेरी किताब भी सही और तेरी बहिन जी भी सही। एक मैं ही हूँ जो झूठ बोलती हूँ। बस अब तो हुआ सन्तोष तुझे। अब जाकर बाहर क्यो नही खेलता। क्यो मेरा दिमाग चाट रहा है एक छोटी-सी बात के लिए।" मम्मी ने ऊबकर मुझे हाथ जोडते हुए कहा। मैं जाकर खेलने लगा। पर मन मे आया कि बिलकुल झूठ बोल रही हैं मम्मी। कहती हैं अस्पताल से बच्चे लाते हैं। शाम को पापा आएँगे तव उनस मम्मी की शिकायत करूँगा। सचमुच कितनी झूठी हैं मम्मी ?

दूब के किनारे की गीली मिट्टी से मैं घरौंदा बनाने लगा। नाली के पानी से एक छोटी सी नहर निकालकर घरौंदे के चारो ओर फैलाया। घर के अन्दर जाने के लिए नहर पर माचिस की डिबिया से पुल बनाया। कोने मे एक ओर अपनी मोटर लाकर खडी की। इसी तरह अपनी दुनिया बनाने में ही सारा दिन गुजर गया। दिमाग से सुबह वाली बात निकल ही गई।

शाम को पापा वापस आए तब भी याद न रहा कि मैं उनसे मम्मी की शिकायत करने वाला था। खाना खाते समय पापा को ही अचानक याद आया तो मम्मी से पूछा "सुबह कब लौटी फिर शर्माजी के यहां से ?"

'अरे हम तो उसी समय आ गए थे। भीड मे मैं तो बोर हो गई। ये पप्पू भी ऊब गया। जिद करने लगा लौटने के लिए।"

"कैसी तबियत है उनकी अब ?'

'उनकी तो तबियत ठीक है। पर बच्चा थोडा सा दुबला है इसलिए घबरा रही थी व।'

मुझे अचानक याद आया कि सुबह मैंने पापा से मम्मी की शिकायत करने का निश्चय किया था। उसे याद करते हुए पापा से कहा

"पापा ! मम्मी बिल्कुल झूठी हैं। सब कुछ झूठ बोलती हैं पापाजी। मुझसे कह रही थी बच्चा अस्पताल से आता है। माया ने मुझसे कहा है कि उसका भाई तो घर पर ही हुआ। उनकी मम्मी के पेट से निकला है।"

मम्मी मेरी इस बात से चिढ गईं। नाराज होते हुए बोली, यह क्या सवेरे से रट लगा रखी हैं तूने आज ? जस बात करने के लिए दूसरा कोई विषय ही नही। चल जाकर खेल चुपचाप। ऐसी ही गन्दी बातो में ध्यान देता रहता है।'

यों दुत्कार जाने पर गुस्से में आकर मैंने भी कह दिया

इतना झूठ तो बोलती हैं और ऊपर से डाँटती रहती हैं। देख लेना भगवान आपको पाप देगा। नरक में जाना पडेगा आपको। पापा भी झूठ बोलते हैं, पापा को भी जाना पडेगा नरक में।"

इतना कहना था कि आग मे जैसे घी गिर गया। मम्मी बहुत गुस्से हो गईं। चीखते हुए बोली

"अब तू माँ बाप के लिए यही कामना कर। कितना शुभ बोल रहा है शाम के समय हमारा बेटा ? दूसरे बच्चे तो मूरख ही हैं जो कामना करते हैं माँ-बाप की उन्नति के लिए। उनकी भलाई के बारे म सोचते हैं। और एक य हैं हमारे साहबजादे जो हम सीधे नरक म ही भेजना चाहते है। इसीलिए तो पाल पासकर बड़ा कर रहे हैं तुझे कि तू हमारे लिए ऐसी ही मनौतियाँ मनाए।"

अब तो देखना जरूर जाओगे आप " मैंने फिर चिढ़कर जिद करते हुए-स कहा।

पापा को बहुत ही बुरा लगा। उन्हें मेरा या बदतमीजी करना बिल्कुल नही भाया। कुर्सी सरकाकर व उठ खड़े हुए। मेरे पास आकर उन्होंने मुझे जोरों स पीटना शुरू किया। ताबड़तोड़ लगातार पीटते ही गए। मैं बुरी तरह से रोने लगा। इतना कि रोते रोते गले से आवाज आनी बन्द हो गई, हिचकियाँ आने लगी मुझे। आखिर मम्मी का दिल ही पसीजा। पापा से मुझे दूर ले जाते हुए बोलीं 'बस भी करो। क्या मार ही डालोगे इसे ?"

पापा न जलती निगाहों स मुझे घूरा और थप्पड़ लगाकर छोड़ दिया। मम्मी से बोले तुम्ही न सिर पर चढ़ा रखा है इसे। तभी बदतमीज हो रहा है। कुछ भी तमीज नही है। किससे क्या कहना चाहिए इसको भी ख्याल नही है। आज मैं इसकी हड्डी-पसली तोड दूँगा। नरक भेजेंगे य मम्मी पापा को ! समझाएँगे तो समझेंगे नहीं।"

मम्मी भी अब तनिक घबरा गई थी। मुझे गोद म लेकर वे बिस्तर पर ले आई और थपथपाते हुए मुझे सुलाने लगी। मेरा रोना तो बन्द हो गया पर साँसें भरी की भरी रही। कभी-कभी हिचकी भी आ जाती रोते रोते ही मैं जाने कब सो गया।

रात को मैंने स्वप्न देखा कि अस्पताल के बाहर लोगों की भीड़ लगी हुई है। बच्चे मागने वालो की लम्बी लम्बी कतारें लगी हुई है। सफेद कपड़े पहिने हुए नर्सें भीतर से ला लाकर लोगों को बच्चे दे रही रही हैं। मैंने देखा, मम्मी भी एक पंक्ति म खड़ी हैं। बहुत पीछे हैं तब भी उनको कोई चिन्ता नही है। बड़े आराम स वे अपने पास खड़ी औरतों

से गप्पें लडा रही हैं। चालाक औरतें आ-आकर बीच मे घुसी चली जा रही हैं। मम्मी को लेकिन बिल्कुल चिन्ता नही है।

मैं अधीर होता जा रहा हूँ। मुझे लगता है मम्मी यदि यो ही खडी रही तो अस्पताल बन्द हो जाएगा और मम्मी कुछ भी न पा सकेंगी। इससे तो य मुझे खडा कर दें तब भी कोई बात बने। मैं घर से सबसे आगे पहुच जाऊँगा।

उस दिन किया नही था, जब पापा कही बाहर गए हुए थे। केरोसिन की किल्लत थी। घर म बिल्कुल खत्म हो गया था तेल और मम्मी बहुत परेशान हो रही थी। तब मैं ही तो लाया था उस दिन केरोसिन तेल। पक्ति मे एकदम आगे घुस गया था। लोग चिल्लाते रहे और मैंने झट मे सेठ के हाथ मे डिब्बा पकडा दिया था। पूरे पाँच लीटर मिट्टी का तेल लेकर आया था मैं तब।

मम्मी कह ता मैं अभी पक्ति म सबस आगे आकर खडा हो जाऊँ। फिर देखता हूँ, कसे नही देंगे वे मरा छोटा भाई? पर मम्मी हैं कि न तो चिन्ता ही कर रही हैं न मेरी बात ही सुनती हैं। अपनी धुन म खडी-खडी मस्ती से गपशप कर रही हैं दूसरी औरतो के साथ।

आखिर वही हुआ जिसका मुझे डर था। देखत देखते शाम हो गई और आखिरी बच्चा लाकर नस ने हाथ हिलाकर बाकी लोगो को मना किया और झट से दरवाजा बन्द कर दिया। एक क्षण के लिए मैं निराश हो गया। इतना कि रोना ही आ गया। रास्ते मे मुझे यो रोता देखकर मम्मी को गुस्सा आ गया और उन्होने मुझे एक थप्पड लगा दिया। यही स्वप्न टूट गया।

आँखें खोलकर देखा तो सवेरा हो चुका था। मम्मी-पापा तो कभी के उठ चुके थे। मैं भी उठ गया और दनिक कार्यों म व्यस्त हो गया। फिर तो स्वप्न की बात याद ही न रही।

☐

छुट्टी के दिन जब कभी पापा को मुझे पढाने की धुन सवार हो।

पप्पू

तब मेरे लिए उनकी वह इच्छा सदैव भय का कारण बन जाती है। उसके विचारमात्र से ही आतंकित होकर मैं अपने बचाव के यथासम्भव प्रयास करने लगता हूँ। दातुन करने में बहुत ज्यादा समय लगाता हूँ। नाश्ता करने में भी अधिक से अधिक समय नष्ट करता हूँ। पेंसिल छीलने के बहाने पापा की नजरों से दूर हट जाता हूँ। वापस लौटकर बस्ते की सारी किताबें कापियाँ बाहर निकालकर उन्हें दुबारा व्यवस्थित करने लगता हूँ। इसी तरह के अन्य गैरजरूरी कार्यों में अपने को व्यस्त रखकर मैं इस बात की कोशिश करता हूँ कि किसी तरह पापा का ध्यान मुझसे हट जाए।

मन ही मन कामना करता रहता हूँ कि पापा मुझे पढ़ाने की बात भूल जाएँ। या कोई मिलने वाला आ जाये और पापा उसके साथ गप शप में खो जावें। या फिर उन्हें घर की सफाई करने का ही ख्याल आ जाए।

बचपन से ही मैं देखता आया हूँ कि छुट्टी के दिन पापा को कोई न कोई ऐसी ही धुन सवार हो जाती है। वे घर की सफाई करने लगते हैं। बगीचे में जाकर कुछ न कुछ करने लगते हैं। इन कामों में जुटकर पापा छुट्टी के दिन के बोझिल फालतूपन से मुक्त हो जाते हैं। वे इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें फिर किसी दूसरी बात का ख्याल नहीं रहता। थक जाने तक वे उन्हीं कार्यों में खोए रहते हैं। ऐसे समय भोजन-पानी की सुध भी नहीं रहती पापा को।

मुझे पढ़ाने का कार्य भी पापा बड़े ही उत्साह से करते हैं।

और पापा से पढ़ाए जाने का मतलब है जमकर सजा पाना। पापा से पीटे जाने की आशंका के कारण मैं विषय पर पूरा ध्यान नहीं दे पाता। उस समय पापा का आतंक मुझपर इस कदर हावी हो जाता है कि घबराहट में मैं सरल से सरल सवाल भी गलत कर देता हूँ। याद किए हुए उत्तर भूल जाता हूँ। शब्दों के हिज्जे गलत बोल जाता हूँ। लिखते समय मात्राओं की अशुद्धियाँ लिखने लगता हूँ।

इससे पापा का गुस्सा बढ़ जाता है। उत्तेजित होकर उनका आचरण क्रमशः बदलने लगता है। पहली अवस्था में वे सिर्फ खीज प्रकट करते

हैं। मुझे गलती करता देखकर मेरी किताब पटक देते हैं स्लेट को पटक देते हैं। दूसरी अवस्था में वे मेरे कान उमेठने लगते हैं। इतनी निर्दयता से कान उमेठते हैं कि वह सुर्ख लाल होकर दर्द करने लगता है। तीसरी अवस्था में पापा अपने आप पर पूरा नियंत्रण ही खो देते हैं और मुझे बुरी तरह से पीटने लगते हैं। इसलिए इन सभी बातों का ख्याल करके मैं मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगता हूँ कि कुछ ऐसा हो जाए कि पापा का ध्यान बँट जाए और वे मुझे पढ़ाना छोड़कर किसी और काम में व्यस्त हो जावें।

और जिस दिन मम्मी से झगड़कर पापा मुझे पढ़ाने बैठते हैं तब तो मन ही मन मैं बहुत डर जाता हूँ। क्योंकि मुझे लगता है कि यदि इस समय पापा मुझे पीटने लगे तो मम्मी भी छुड़ाने के लिए नहीं आएँगी। और मैं लम्बे अरसे तक पापा की निर्दयता का शिकार होता रहूँगा।

इन दिनों दशहरा अवकाश के कारण हमारे स्कूल बन्द हैं। और रविवार होने से आज पापा भी घर पर ही हैं। पापा ने जब पढ़ाने के लिए बुलाया तो मैं सहमा हुआ सा उनके पास जा पहुँचा। लेकिन इस समय मैं पढ़ना नहीं चाहता था। मेरी बालकोचित अभिरुचियाँ मुझे घर से बाहर अपने मित्रों की ओर खींच जा रही थीं। उसके लिए पर्याप्त कारण भी विद्यमान था।

बात यह है कि हम बच्चों ने मिलकर एक रामलीला समिति बनाई थी। हम सबने मिलकर यह निश्चय किया था कि दशहरे दिन मिलकर हम लोग रामलीला खेलेंगे। इसकी प्रेरणा हमें एक रामलीला कम्पनी से प्राप्त हुई थी।

पिछले वर्ष हमारे मोहल्ले में श्री सीताराम नाटक एण्ड रामलीला कम्पनी ने सम्पूर्ण रामलीला का प्रदर्शन किया था। पूरे दस दिनों तक चहल पहल रही थी तब मोहल्ले में। नितिन के घर के पास की खाली जमीन पर उन लोगों ने रंगमंच बनाया था। रंग बिरंगे पर्दे जो वे अपने साथ लाए थे उन्हें करीने से बाँध दिया गया था। पीछे का पर्दा तो इतना सुन्दर था कि बिल्कुल सचमुच का सा दिखलाई देता था। जंगलों के बीच से बहती हुई नदी और उसके किनारे किनारे भागता हुआ सोने

का हिरन।

रामलीला का नशा सारे मोहल्ले पर छाया हुआ था। सभी लोग तब सिर्फ उसी की बातें करते रहते थे। हम बच्चों में तो इतना उत्साह था कि हम लोग शाम से ही वहाँ इकट्ठे हो जाते थे। हवा से जब कभी पर्दा हिलने लगता तो नीचे से झाँककर हम यह देखने की विफल चेष्टा करते थे कि भीतर क्या हो रहा है। दिन के समय जब कम्पनी वाले रिहर्सल कर रहे होते तब भी हम लोग वहाँ पर इकट्ठा हो जाते। उनके साथ साथ सम्वाद बोलने लगते थे।

मुझे तो सारे के सारे सम्वाद याद हो गए थे। अक्सर ऐसा होता कि जब कोई पात्र बोलते-बोलते अपना सम्वाद भूल जाता तो मैं चट से बीच में बोलकर उन्हें याद दिला दिया करता। बहुत खुश होते थे वे लोग तब। खुद राम ने एक बार मेरी पीठ थपथपायी थी और कम्पनी के मैनेजर से कहा था "उस्ताद! इस लड़के को भी अपनी कम्पनी में भर्ती कर लेते हैं। कितना अच्छा है यह लड़का। राम के बचपन का पाट करने के लिए बिल्कुल फिट रहेगा।'

उसकी बात सुनकर मैं तो तैयार ही हो गया था। उन्होंने पूछा भी था मुझसे "पप्पू, चलेगा क्या हमारे साथ? तुझे हम राम बनाएंगे अपनी कम्पनी में। सभी लोग पूजा करेंगे तेरी। खूब मजे रहेंगे तेरे?" मैंने खुश खुश हामी भर दी थी। लेकिन मुझे यों सम्मान पाता देखकर नितिन चिढ़ गया था और मेरे घर पर जाकर उसने चुगली खा दी थी मेरी।

मम्मी तो बिल्कुल घबरा गईं। उन्होंने उसी समय बुलाकर मुझे डाँट दिया था। कहा, "कितने गन्दे लोग हैं वे। आइन्दा उनके पास जाने की जरूरत नहीं है। यदि फिर वहाँ चला गया तो तेरे पापा से शिकायत करके पिटाई कराऊँगी तेरी। कहीं बहला-फुसलाकर ले ही गए तुझे अपने साथ तो? नहीं, कोई जरूरत नहीं है आगे से उनके पास जाने की।" मम्मी ने उसके बाद सचमुच मुझे उन लोगों के पास नहीं जाने दिया था।

मुझे बहुत बुरा लगा। नितिन पर भी गुस्सा आया मुझे। मैंने निश्चय किया कि आगे से उससे कुट्टी कर लूंगा। अपनी कोई भी चीज नहीं दूंगा

उसे। खुद को गरज होनी है तब तो कैसी मीठी मीठी बातें करता है और गरज मिटते ही कैसी अकड दिखाने लगता है। अब देख लेना, बच्चू को सवाल भी नहीं बतलाऊँगा। स्कूल में पिटाई होगी तब कितना मजा आएगा।

मम्मी पर भी गुस्सा आया मुझे। कैसी है मम्मी ? खुद के बच्चे की बात तो सुनती नहीं दूसरा आकर शिकायत कर देता है तो झट से सुन लेती हैं। वे लोग गन्दे कैसे हैं ? रामलीला करते हैं। बिल्कुल भगवान की तरह आकर स्टेज पर बोलते हैं। सभी लोग कितने भावविभोर होकर देखते हैं तब उनको। मम्मी खुद भी उन्हें श्रद्धा भरी नजरों से देखती है। तब क्यों नहीं कहती कि राम गन्दे हैं ? अरे भगवान भी गन्दे होते होंगे कहीं ?

दूसरे दिन गुस्सा उतरने पर मुझे लगा कि मम्मी शायद ठीक ही कहती हैं। रामलीला करते हैं तब भले ही वे अच्छे रहते हों वरना सारे दिन तो कैसी गन्दी गन्दी बातें करते रहते हैं वे। बीडियाँ पीते हैं। एक-दूसरे को गालियाँ देते हैं।

लक्ष्मण बनने वाले लडके ने तो एक दिन माया को आँख मारकर चिकोटी काट ली थी उसके। माया ने मेरे सामने ही तो अपने पापा से शिकायत की थी। नाराज होकर जब उसके पापा लडने के लिए आए थे तब मैनेजर ने हाथ जोडकर माफी माँगी थी।

नितिन भी तो कह रहा था, नाटक खत्म होने के बाद ये लोग दारू पीते हैं। उसने एक खाली बोतल भी दिखलाई थी हम सबको। मुझे तो उसकी बदबू से ही मितली सी आने लगी थी।

तब मुझे महसूस हुआ, मम्मी ठीक ही कहती हैं। सचमुच कितने गन्दे हैं वे लोग।

उसके बाद कम्पनी वालों के पास नहीं गया मैं। शाम को नाटक शुरू होने पर मम्मी के साथ ही उसे देखने जाता और खत्म होने पर उन्हीं के साथ वापस लौट भी आता था।

इस वक्त हम बच्चों में अत्यधिक उत्साह था। रामलीला का क्या है ? कोई मुश्किल थोडे ही है ? हम लोग स्वयं ही कर लेंगे।

सारे मम्वाद तो याद हैं हमे।

राम को वन मे भेजन के लिए कैकयी जब दशरथ स वर मांगती है तो वे कहते हैं "हे रानी ! तुमन रघुवश के लोगा को पहचाना नही है। हमारे कुल म लोग मर जाना कबूल कर लेते हैं लेकिन अपन वचना का तोडना पसद नही करते।" फिर दशरथ की ओर घूमकर कहते हैं, "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाहिं वर वचन न जाई।"

इसी तरह राम भी वन जाने की आज्ञा लेन क लिए दशरथ क पास जाकर कहते है, "पिताजी, आप आज्ञा दें तो मैं आकाश के तारे तोड कर धरती पर ल आऊँ। गगा को खीचकर यहाँ ल आऊँ। समुद्र को उलटकर दिखला दू। आप आज्ञा तो दीजिए फिर दखिए मैं अभी इस सोने के सिंहासन को ठोकर मारकर वन म चला जाऊगा और भाई भरत को राज्य देकर जगल म ही मगल करने लगूगा।"

मुझ ही नही हम सब बच्चा को वे सारे सम्वाद याद थे। उन्ही के आधार पर बहुत दिना स हम रामलीला की तैयारी कर रहे थे। सब लोगो ने बैठकर याद करके पूरा नाटक ही लिख लिया था दुबारा।

आपस मे मिलकर ही अपनी सारी भूमिकाएँ भी बाट ली थी।

मैं तो बना-बनाया राम था ही। जब कम्पनी वाले खुद ही मुझे राम बनाना चाहते थे तब भला मेरे राम बनने पर कौन आपत्ति कर सकता था ?

मेरे पक्ष म एक और बात भी थी। पिछली जन्माष्टमी पर मैं कृष्ण भी बना था। मम्मी न पीताम्बर पहनाया था। गत्ते के छोटे टुकडे स मैंने मुकुट भी बनवा लिया था पापा से। रेणु दीदी न मोरपख और राखियो के सुदर-सुदर तारा मे उस सजा दिया था।

नितिन के पास एक छोटी सी अच्छी बासुरी थी। बहुत मिन्नत करने पर भी उसने नही दी थी। दरअसल वह चिढ गया था। खुद ही कृष्ण बनना चाहता था पर उस कृष्ण बनाने के लिए कोई तयार न हुआ। रूठकर उसने बाँसुरी देने से इकार कर दिया। हारकर मैंने लकडी की एक डण्डी ही ले ली थी बाँसुरी के रूप मे। परो म घुघरू भी बाँध लिए थे।

कृष्ण बनकर मैं सारे मोहल्ले मे घूमता फिरा था। सभी लोगो ने मुझे सचमुच का कृष्ण समझा था। बालकृष्ण के रूप म मुझे देखकर बहुत खुश हुए थे वे लोग।

रेणु दीदी की दादीजी तो मुझे देखकर नाचने ही लगी थी। बार-बार बलैया लेते हुए वे झूम-झूमकर गाने लगी थी, 'नटवर नागर नन्दा भजो रे मन गोविन्दा।" रात का बारह बजे तक हम लोग यो ही उछल कूद करते रहे थे। जब भगवान का जन्म हुआ तब मेरी ही आरती उतारी थी सब लोगो ने। मैं गदगद होकर नाच रहा था और सभी लोग बहुत खुश होकर मेरी पूजा कर रहे थे।

कृष्ण की ही तरह राम बनने का अधिकार भी मुझे अपने आप मिल गया था। सभी लोगो ने इसे मान भी लिया था। सिर्फ नितिन ने आपत्ति की थी। वह मुझे अपने से ऊँचा उठता हुआ देखना पसन्द नही करता था। इसलिए उसने जिद की थी कि राम उसे बनाया जाय। पर सब लोगो ने मना कर दिया।

बाद मे हनुमान का पाट मिला था उसे। सभी लोग हँस पडे थे उसे हनुमान का पाट मिलते देखकर और चिढाने भी लगे थे उसे।

रामलीला मनाने का उत्साह सबमे इतना था कि उसे शब्दो मे प्रकट नही किया जा सकता। एक प्रकार का नशा ही छा गया था हम सब पर।

नितिन के घर के पास वाली खाली जमीन को हमने भी प्रेक्षागृह बनाया। दीवार के सहारे बने हुए चबूतरे को स्टेज मान लिया गया। सब लोगो ने मिलकर उस जगह की सफाई की। चूने से पुताई कर दीवार को चमका दिया। मैं भागकर अपने घर से नील ले आया। उसे घोल कर रंग बनाया गया और सरकण्डो की कलम की सहायता से उस पर लिख दिया गया 'नवीन बाल रामलीला कम्पनी'।

इसी तरह वानरो की सेना के लिए गत्ते के टुकडे काट-काटकर उन पर गोंद से लाल और काले रंग के कागज चिपकाए गए। उनमे आँखो और मुह के लिए खड्डे करके उनके मुखौटे बनाए गए। मैं ही अपने घर से गोंद ले गया था जो मिनटो मे खत्म भी हो गया। धनुष तीर के लिए

मैं अपने यहाँ से खिड़की के टाट की खपच्चियाँ तोड़ लाया। गर्मी न होने से वह छत पर लावारिस सा पड़ा था। उनकी सहायता से धनुष बनाए गए। माया के घर से टूटे हुए मोढ़े से सरकण्डे निकालकर तीर बनाए गए। इस तरह लगभग सारी तैयारियाँ पूरी कर ली गईं।

अब समस्या सिर्फ पर्दे की रह गई थी। पर्दे के लिए अपने घर से चद्दरें लाने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ। लेकिन बिना पर्दे के भला नाटक कैसे हो सकता था? सभी लोग असमंजस में थे कि इस समस्या से कैसे निजात पाएं। अपने-आपको बचाते हुए सभी दूसरों से यह अपेक्षा कर रहे थे कि वे अपने घर में जाकर चद्दरें ले आएं। लेकिन कोई भी तैयार नहीं हो रहा था।

आखिर नितिन ने कहा, "पप्पू! तू ही ला पर्दे का कपड़ा। राम बना है तो तू ही ला सारी चीजें अपने घर से। मुझे राम बनाते हो तो मैं अभी जाकर अपने घर से सारी चीजें ला दूं। नहीं तो क्यों लाऊँ मैं? हनुमान बनाया है मुझे तो मेरा क्या है? मैं तो घर से फटे हुए कपड़े ले आऊँगा और बना लूंगा अपनी पूंछ। तू बना है राम इसलिए तू ही ला सारी चीजें।"

नितिन ने जो तर्क दिया था वह इतना सटीक था कि सबने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वैसे तो मैं ही सारी चीजें लाया था। गोंद, गत्ते, नील, खपच्चियाँ—सभी कुछ। लेकिन उनसे मतलब निकल जाने पर जैसे सबने उन्हें भुला ही दिया था। अब चद्दरें ही महत्त्वपूर्ण चीजें रह गई थीं। इसलिए यदि मैं उन्हें ले आता हूँ तो ठीक नहीं तो सभी जैसे एक क्षण में ही मुझे राम बनने से रोक देंगे।

नितिन का प्रस्ताव मेरे लिए एक चुनौती सा बन गया था। मैं यदि राम बनना चाहता हूँ तो चद्दरें लाऊँ। यदि मैं नहीं लाता हूँ तो फिर राम नहीं बन पाऊँगा।

नाटक में यदि राम नहीं बनो तो फिर मजा ही क्या है? मैं इस मौके को गँवाना नहीं चाहता था। उन लोगों की बात कुछ कुछ मुझे भी जँच रही थी। मुझे लग रहा था कि मुझे ही लानी चाहिए सारी चीजें अपने घर से। लेकिन मन ही मन मैं डर भी रहा था। पिछली घटना

याद आ गई थी मुझे इस संदर्भ में।

पन्द्रह अगस्त को हम लोगों ने बाल सभा का आयोजन किया था। स्कूल से लौटकर हम मोहल्ले के बच्चों ने मिलकर कई कार्यक्रम किये थे। भाषण दिये थे। कविता पाठ किया था। चुटकुले सुनाए थे और अन्त में सभी बच्चों की दो टीम बनाकर अँधेरा होने तक फुटबाल का मैच खेलते रहे थे।

सभा के लिए सभी लोग अपने अपने घर से सामान लाए थे। कोई कुर्सियाँ लाया था कोई टेबिल, कोई खिलौने तो कोई गुलदस्ते। मैं मेज पर सजावट के लिए मेजपोश ले गया था अपने घर से।

मम्मी के हाथ से बनाया हुआ था वह। कई दिनों तक कशीदाकारी करके मम्मी ने बनाया था वह मेजपोश। दिखने में भी बहुत सुन्दर था। इसलिए सभा के समय सभी ने कहा था कि मैं वह मेजपोश ले आऊँ जिससे मेज की सुन्दरता बढ़ जाएगी। मम्मी की आँख बचाकर मैं मेजपोश ले आया था।

सभा के बाद हम फुटबाल खेलने लगे। रात होने पर अपने-अपने घर चले गए। मुझे वह मेजपोश याद ही नहीं रहा। दूसरे दिन सुबह जब मम्मी सफाई करने के लिए बैठक के कमरे में गई तो उन्होंने मेज-पोश न पाकर मुझसे उसके बारे में पूछा।

मैं एकदम ही घबरा गया। भागकर वहां गया जहां हमने सभा की थी। अब वहाँ पर कुछ भी न था। दूसरे लोग भी मेरी ही तरह अपने-अपने घरों में चीजें लेकर आए थे। लेकिन जाने कब वे लोग उसे वापस अपने घर रख आए थे। मैंने सबसे पूछा लेकिन किसी ने नहीं बतलाया कि मेजपोश कौन ले गया?

मम्मी को जब मेजपोश खो जाने का पता चला तो बहुत नाराज हुई थीं वे। पापा से जाकर मेरी शिकायत ही कर दी थी। पापा भी क्रुद्ध हो गए और मुझे खूब पीटा था उन्होंने। ऐसी छोटी छोटी भूलों से नुकसान जो करता था मैं घर का।

"घर भर को लुटवाकर रख देगा यह।" पापा ने गुस्से में कहा था, "यहाँ तो हड्डी-पसली तोड़-तोड़कर रुपये कमाते हैं। और ये लाट साहब हैं

कि घर को फूकने मे ही लगे हुए हैं। क्या दूसरे लडके नही हैं मोहल्ले मे ? वे नही ला सकते अपने घर स चीजें ? एक तू ही रह गया है दानी कण बनने के लिए ? हमारा घर ही रह गया है बरबाद करने के लिए ? खबरदार जो आइन्दा कोइ चीज ले गया तो।"

यह बात नही कि चीजें खोने स मुझे कोई दुख न होता हो। लेकिन मेरी आदत ही ऐसी है कि खेल खेलते समय मैं इतना तल्लीन हो जाता हूँ कि फिर दूसरी बातो का ध्यान ही नही रहता। अपना, अपनी चीजो का घर का यहाँ तक कि भोजन पानी तक का ख्याल नही रहता मुझे। इन सबसे बिलकुल बेसुध होकर सिफ खेलने म ही लगा रहता हूँ। मैं जान-बूझकर ऐसा करता होऊँ यह भी सच नही है बल्कि चाहता हूँ कि मैं भी दूसरो की तरह घर का कोई नुक्सान न होने दू। ज्यादा स ज्यादा चौकन्ना रहूँ और मम्मी पापा को नाराज होने का कोई अवसर न दू।

लेकिन चाहते हुए भी ऐसा नही कर पाता मैं। हमेशा कोई न कोई गलती कर बठता हूँ। खेलते समय तो इतना पगला जाता हूँ कि फिर दूसरा कुछ नही सूझता मुझे। तब तो बस वही सब कुछ बन जाता है मेरे लिए। सोची हुई बातें जाने कहाँ खो जाती हैं ? खेलने का उन्माद इतना हावी हो जाता मुझ पर कि मैं कुछ भी याद नही रख पाता। इसी कारण फिर ऐसा कुछ हो जाता है कि जिसमे मम्मी पापा नाराज हो जाते हैं और या इसका परिणाम वही होता है जिससे म सदव बचना चाहता हू। वही डाँट फटकार और पिटाई।

नितिन मेरी इस कमजोरी को पहचानता है। दूसरो की कमजोरियाँ ही तो याद रहती हैं उसे हर समय। मैंने पिछले वष मेजपोश खोया था और मेरी पिटाई हुई थी उसे याद करते हुए ही उसने यह पत्तरेबाजी की थी। वह जानता था कि मुझे घर स चद्दर लाने की अनुमति नहीं मिलेगी और ऐसी दशा म मुझे राम नही बनाया जाएगा। मौके का फायदा उठाते हुए मेरी जगह वह राम बन जाएगा।

लेकिन मैं भी उसे कोई मौका नही देना चाहता था। मैं उसे बतला देना चाहता था कि सिफ वही अपने घर स चीजें नही ला सकता है मैं भी ला सकता हूँ। मैंने हामी भर दी थी कि मैं अपने घर से पर्दे बनाने के

लिए चद्दरें ले आऊँगा।

तब से ही मैं कोई तरकीब सोच रहा था कि मम्मी खुश हो जाव और चद्दरो के लिए हामी भर दें। लेकिन भय के कारण माँगने की हिम्मत नही हो रही थी।

रात को सोचा था कि आज सुबह उठकर माग लूगा उनसे। पापा से बचते हुए मम्मी से माँगने की इच्छा कर रहा था मैं। मम्मी को मनाना तनिक आसान भी होता है। वे किसी बात का बुरा भी जल्दी मानती है तो द्रवित भी जल्दी हो जाती है।

पापा को मनाना आसान कम, खतरनाक ज्यादा होता है। वे तो मूडी आदमी है। मूड ठीक होगा तो कितना भी नुकसान हो जाए हँसकर टाल जाएँगे। और जो मूड खराब है तो एक पैसे की चीज भी उनके लिए बहुत बडी हो जाती है। फिर तो साधारण से साधारण बात पर भी पीटने मे सकोच नही करते।

सुबह नहा धोकर मैं मम्मी से चद्दरें माँगने का मनोबल बनाने लगा। मम्मी रसोईघर मे थी। यही उपयुक्त समय समझकर मैंने सहमे हुए से जाकर मम्मी के सामने अपनी फरमाइश रखी। एक दो बार तो मम्मी ने सुनी अनसुनी कर दी। अपने म ही व्यस्त रहते हुए वे पूर्ववत् काय करती रही। फिर जब मैंने जिद की तो मना कर दिया।

तनिक आवेश मे आकर कहा, "जाकर अपने पापा से माँग। जो कुछ लेना हो तुझे उन्ही से ले। मुझे कुछ भी पता नही है। तू मुझसे माग माँगकर ले जाता है चीजें और खो देता है। फिर तेरे पापा मुझे डाटत हैं। मैं तो बाबा इन पचडो मे नही पडती। जा, जाकर माँग ले उन्हीं से जो कुछ भी तुझे लेना है। वे अगर दत हो तो ठीक, ना देत हो तो मेरी बला से। मैं होती ही कौन हू तुझे चीजें देने वाली।"

बात दरअसल यह थी कि आज सुबह-सुबह मम्मी पापा मे तनिक तकरार हो गई थी। तभी से खिचे हुए थे दोनो ही। नाश्ते के समय रोजाना की तरह न तो पापा ने चाय के लिए देरी के सम्बन्ध मे झूठी शिकायत की थी और न मम्मी ने ही प्यार से उन्हे झिडककर टोका था।

नहाकर पापा चाय पीने के लिए आकर चुपचाप बैठ गय थे। अपने

मे ही खोए हुए वे गुमसुम से बैठे रहे। मम्मी ने भी बिना मुह से कुछ बोले चाय का प्याला धीरे से उनकी तरफ सरका दिया था।

झगडे का कारण क्या है, यह तो मैं नही समझ पाया, पर दोनो के बीच कुछ तनाव है इसे मैंने सूघ लिया था। दोनो ही अपने-अपने मोर्चे पर डटे हुए थे। वार करने के लिए मौके की तलाश मे इतजार करने वाली मुद्रा म व्यवहार कर रहे थे। दोनो ही अनबोलेपन का ओढे हुए अकारण व्यस्त रहने का भाव प्रकट कर रहे थे। लेकिन मैं अच्छी तरह समझता था कि यह अपने म खोए रहने का भाव भी भीतर ही भीतर दूसरे मे अपनी समूची लिप्तता लिए हुए है।

इस तनाव के समय जब मैंने मम्मी से चद्दर की माँग की थी तो उन्होने मुझे सुनाने के बहाने अप्रकट रूप मे पापा को ही ये सब बातें सुनाई थी। पापा उन्हे सुन लें और उनकी व्यञ्जनाओ से अधिक आहत होकर तिलमिला जाएँ इसीलिए तो कही थी व बातें मम्मी न।

हुआ भी यही। पापा एकदम क्रुद्ध हो गए। फिर उन्होंने मम्मी का गुस्सा मुझ पर निकाला। बात का पूरी तरह समझ बिना ही उन्होने मुझे सीधे डाँट दिया, 'कोई नही मिलेगी चद्दर-वद्दर तुझे। कहते है नाटक करेंगे। पढाई करने म तो मौत आती है इन्हे। चलो, चलकर पढाई करो चुपचाप।"

फिर मम्मी का सुनाने के लिए कहा, अजीब तमाशा है। छुट्टी के दिन भी आराम नही है। घर म दो घडी चैन स भी नही बैठ सकता कोई। हर समय कोई न कोई फरमाइश करता हुआ खडा रहता है छाती पर। कभी माँ खडी हुई है तो कभी बेटा। आदमी न हुआ घाणी का बल हो गया। जुआ कन्धे पर लादे हुए बस खीचते रहो। कोई चैन से बैठ कैसे ल भला घर म।'

यह मम्मी पर वार किए थे पापा न। बन्दूक लेकिन मेरे कधे पर रखकर दागी थी।

मम्मी भी भरी हुई थी। तुनककर बोलीं, "मेरा नाम लेन की जरूरत नही है। क्या माँगा है मैंने जो या जलील कर रहे हैं ? मैं तो आज म ही सौगन्ध लेती हूँ कि आगे म कुछ भी नही माँगूगी किसी स।

"घर मे जो कुछ होगा राध-रूँध कर ला दूगी । चीजें होगी तो ठीक नही होगी तो मेरा क्या है ? मैं ही मूख हूँ जो इतना करती हूँ । घर भर के लिए चिन्ता करो ऊपर से गालिया भी सुनो । यह नही होगा मुझसे ।" इसी तरह कुछ और भी बडबडाती रही मम्मी लगातार ।

पापा कुछ देर तक तो सुनते रहे फिर उनका गुस्सा बढ गया । मुझे वही पर खडा देखकर उन्होंने मेरा कान पकड लिया । फिर उसी के सहारे मुझे खीचते हुए पढने की टेबिल तक ले आए और कहा, "चलो, पढाई करो । यदि अभी सारा काम करके मुझे दिखला नही दिया तो हाथ-पाव तोड दूगा । समझे ।"

मैं घबराया हुआ सा, पीटे जाने की प्रतीक्षा म सवाल करने लगा । सवाल वैसे तो बिल्कुल आसान थे । बहिन जी ने जिस दिन कक्षा मे उन्हे समझाया था उसी दिन मैं उन्हें हल करना सीख गया था । लघुतम और महत्तम समापवर्त्य और निकालने थे सख्याओ के । उनमे छोटी छोटी सख्याओ से एकसाथ भाग देना मुझे अच्छा लगता था इस लिए चुटकियो म ही ऐसे प्रश्नो का हल निकाल लिया करता था मैं ।

आज लेकिन घबराहट म गलती हो गई । म० स० प० निकालते समय अन्तिम सख्याएँ ३ × ३ × ३ थी । जल्दी म तीन को सिर्फ तीन से गुणा करके मैंने नौ उत्तर निकाल दिया था । इतनी छोटी-सी भूल से पापा उत्तेजित हो गए और मेरे गाल पर तमाचा जड दिया । "तीन का गुणा करना नही आता इनको । और कहते है सब कुछ ला देंग य । क्या फायदा इनके लिए पसा खच करने स । किसी नौटकी मे भर्ती कर दो इनको । हिजडो की तरह कूल्हे मटका देंगे ये । उन बातो म इनका मन लगता है लकिन ढग से पढाई करने मे नही ।' फिर मम्मी के लिए जोड दिया "घर म कोई देखता भी नही है । पहाडे तक याद नही करवा सकता कोई । बस तो घमण्ड इतना है कि हम बी० ए० पास हैं । अरे एक छोटे से छोकरे को भी पढा नही सकते तो पढाई आखिर किस काम की ? इसस तो अनपढ माँ ही अच्छी थी ।'

मम्मी भी बिफर पडी ।

वाग्युद्ध छिडने पर मम्मी पापा दोनो ही अपना-अपना गुस्सा मुझ

पर ही निकालते है। इस दृष्टि से मैं उनका पुत्र न होकर एक उपकरण कहा जा सकता हूँ जो उनकी खीज, गुस्सा, नाराजगी को निकालने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

पापा जब मम्मी पर गुस्सा होते हैं और उन पर हावी नही हो पाते है तो मुझे पीटने लगते हैं। इसी तरह मम्मी भी पापा के आचरण से दुखी होकर उन पर जोर चलता न देखकर मुझी पर अपना गुस्सा निकालती हैं। मेरे लिए हर हालत मे उनसे पिटना या डाट खाना अनिवार्य होता है।

आज भी यही हुआ। गुस्से से भरकर मुझे पहिले पापा ने पीटा। फिर उनके कटाक्षो से चिढकर मम्मी ने भी पीट दिया। दोनो से मार खाकर मैं रोता हुआ सुबकियां भरने लगा। रोता रोता फर्श पर ही सो गया। जाने कितनी देर तक वही सोया रहा।

नीद के कारण मुझे आराम तो मिला पर मेरी समस्या का कोई सटीक समाधान नही निकल पाया।

शाम के समय सब बच्चो ने मुझे आखिरी बार चेतावनी दे दी कि मैं यदि सुबह तक चद्दरें नही लाता हूँ तो मुझे राम नही बनाया जाएगा और मेरी जगह नितिन को राम बना दिया जायेगा।

दूसरे दिन शाम को तो रामलीला खेलनी ही थी।

मैं अब तक अपनी पूरी कोशिश से जिस बात को अपने ढग से होता हुआ देखना चाहता था वही मेरे लिए सम्भव नही हो पा रही थी। मुझे लगा अब मैं राम नही बन पाऊँगा। क्योकि मम्मी पापा का सुबह का व्यवहार इसे प्रमाणित कर चुका था कि किसी भी कीमत पर वे मुझे चद्दरें नही देंगे। मेरी सारी मेहनत इतनी-सी बात के कारण खटाई मे पड रही थी।

मैंने कितना अभ्यास किया था राम का अभिनय करने के लिए। स्कूल से आकर कमरा बन्द कर लेता और शीशे के सामने सम्वाद बोलते हुए अभ्यास करता। कम्पनी वाले जैसे स्टेज पर घूमते हुए अभिनय करते थे उसे याद कर करके मैं भी वैसा ही अग सचालन करने की कोशिश करता।

और फिर पहिली बार मोहल्ले वालो के सामने मुझे अभिनय करना

था। उस बात से ही मैं रोमाच का अनुभव कर रहा था अपने मे। एक नवीन प्रकार का उत्साह मुझमे समा गया था जो मुझसे व्यवहार करवा रहा था। तब मानो मैं नही मेरा उत्साह ही प्रकट होकर मेरा रूप ग्रहण किए हुए था। और एक छोटी सी बात के कारण यह मौका मेरे हाथ से निकला जा रहा था। मैं बहुत व्याकुल हो गया लेकिन कोई उपाय सूझ नही रहा था।

सुबह उठकर भी मैं वैसा ही अनुभव करता रहा। तब पहिली बार मैं अपनी जिद् से हार गया। हर कीमत पर राम बनने का ख्याल ही वह कारण था जिसने मुझे मम्मी-पापा के भय से विरत होकर उनकी उपेक्षा करने की प्रेरणा दी। मैंने निश्चय किया कि मैं आज चद्दरें ले जाकर दूगा उन्हे। फिर परिणाम जो कुछ भी हो।

पापा के दफ्तर चले जाने के बाद जब मम्मी रसोई का काम निपटाने लगी तब मैंने धीरे से अलमारी खोलकर दो धुली हुई चद्दरें निकाल ली। ऐसा करते समय मुझे डर लग रहा था कि मम्मी कही देख न लें। हृदय बहुत जोरो से धडकने लगा। घबराहट मे सारा शरीर पसीना पसीना हो गया।

चोरी करने के विचारमात्र से मन दुबल पडता जा रहा था। एक बार तो इच्छा हुई कि चद्दरें वापस रख दू और मम्मी से ही इजाजत लेने की चेष्टा करूँ।

लेकिन दूसरे ही क्षण यह विचार दिमाग से हट गया। लगा, मम्मी तो मना करेंगी ही। फिर तो मैं राम बनने से रह जाऊँगा।

इसी असमजस के कारण चद्दरें निकालकर भी मैं उन्हे बाहर न ले जा सका।

आज तक मम्मी पापा की इच्छा के बिना मैंने कभी कोई काम न किया था। अनजाने मे मैंने भले ही भूल कर दी हो लेकिन उनके द्वारा मना कर दिए जाने पर दुबारा वे भूलें मैंने नही की थी। आज पहिला अवसर था जब मैं उनके द्वारा मना कर दिए जाने पर भी इतना दुस्साहस कर रहा था।

इसी समय बाहर से नितिन ने आवाज दी। मैं डर गया कि

नन्दर मम्मी का सारी बातें बतला देगा, और फिर कोई बखेडा खडा करवा देगा। मुझे लगा कि मम्मी उसकी आवाज को सुनकर अभी इधर आ जावेंगी और मुझ चोरी से चद्दरें ले जाता देखकर पीटने लगेंगी। इसलिए जल्दी से चद्दरो को मैंने अपने कमीज के नीचे छुपा लिया और भागकर बाहर आ गया।

मुझे पर्दों की व्यवस्था करता देखकर नितिन निराश हो गया। उसका मुह छोटा हो गया। वह तो समझ रहा था कि मैं ऐसा नही कर पाऊँगा और फिर मेरी जगह वह राम बन जाएगा। पर उसका सोचा हुआ पूरा न हो सका। बेचारे को परिस्थितियों से विवश समझौता कर लेना पडा।

हमने दीवारो मे कीलें ठोककर उन पर आर-पार एक रस्सी बाँध दी। उस रस्सी पर आलपिनो की सहायता से चद्दरो को तान दिया। पर्दा लग जाने पर रामलीला की सारी व्यवस्था पूरी हो गयी। अब शाम को उसे खेलना भर रह गया था।

शाम होते ही सभी लोग रामलीला देखने इकट्ठे होने लगे। हमने उसका प्रचुर प्रचार जो किया था।

सबसे पहिले बच्चे आए, फिर औरतें और आखिर मे मोहल्ले के आदमी।

रामलीला शुरू हुई। सारी तैयारियों के बावजूद उसके प्रदर्शन मे त्रुटियाँ रह ही गई। किसी बन्दर का मुखौटा गिर गया तो कोई घबराहट मे अपना सम्वाद ही भूल गया। कोई दर्शको की ओर ही मूर्ख की तरह देखने लगा।

नितिन के साथ तो बहुत बडा मजाक हो गया। उसने हनुमान बनने के लिए कपडो की पूछ बनाई थी जब समुद्र पार करने के लिए उसने लम्बी छलाग लगाई तो असावधानी मे उसकी पूछ किसी वानर के पैर के नीचे दबी रह गई। इसलिए वह खुद तो समुद्र पार कर लका मे जा पहुचा पर उसकी पूछ पीछे ही रह गई। फिर तो जो ठहाका लगाया था सबने कि बेचारा सहम गया। चुपके से वापस आकर उसने पूछ उठाई और वापस लगाई। क्योंकि बिना पूछ के वह माने की लका को कैसे जला पाता?

मैंने कई दिना तक घर में शीशे के सामने अभ्यास किया था। इसलिए मेरा अभिनय बहुत अच्छा हो रहा था। यह बात मैं दर्शकों की प्रतिक्रियाओं से अनुभव कर रहा था। जब मैं राजा दशरथ की आज्ञा से वन के लिए रवाना हुआ तो बहुत सी औरतें तो मुझे देखकर सचमुच रोने लगीं। कई स्त्रियाँ साड़ी के आँचल से अपने आँसू पोंछने लगीं।

रावण को मारने के लिए मैंने जो तीर छोड़ा था वह सचमुच सीधा जाकर रावण की छाती से लगा था। जैसे यह अभिनय न होकर वास्तविकता हो। सभी ने तालियाँ बजाई थीं।

हमारी रामलीला कुल मिलाकर सफल जा रही थी। लंका विजय के बाद अब सिर्फ राम का राज्याभिषेक का दृश्य ही बाकी रह गया था। स्टेज को सजाकर पर्दा जब आखिरी बार खोला जाने लगा तब नअचाक एक दुर्घटना हो गयी।

बात कोई बड़ी तो नहीं थी पर मेरे लिए तो निस्सन्देह अत्यधिक महत्त्व रखती थी।

बात यह हुई कि आखिरी बार पर्दा खोलने के लिए ज्योंही चद्दरों को खींचा गया त्यों ही उनमें फसाई हुई आलपिनों में से एक की नोक दूसरे पर्दे में अटक गई। पर्दा खींचने के साथ ही उसमें अटके होने के कारण वह खुला नहीं बल्कि चिर र र की आवाज के साथ फट गया। जब तक खींचने वाला बात को समझकर उसे खींचना बन्द करता तब तक एक चद्दर तकरीबन आधी फट गई।

मैं एकदम घबरा गया। एक क्षण में ही मेरा ध्यान नाटक से हटकर चद्दर में ही खो गया। यद्यपि मुझे दर्शकों में मम्मी पापा दिखलाई तो नहीं दिए किन्तु अपनी अंतर्दृष्टि द्वारा मैंने अनुमान कर लिया कि वे इस बात को देखकर कितने नाराज हो गए होंगे।

वैसे ही मैं चद्दरें चुराकर लाया था। इसलिए नाटक देखने आते ही उन चद्दरों को देखकर उनके तेवर बदल गए होंगे।

या कौन जाने नितिन ने चुपके से चुगली ही खा दी हो मम्मी से। मैं तो दिन भर यहाँ पर ही व्यस्त रहा था। इसलिए पीछे से घर पर क्या कुछ हुआ इसकी मुझे जानकारी नहीं थी। मम्मी को पता चल गया था

या नही इसकी जानकारी भी न थी मुझको।

चद्दर को फटते देखते ही वे सारी बातें याद आ गईं मुझको जिनको अभी तक मैं अतिरिक्त उत्सुकता के कारण भुला बैठा था। इसलिए मैं बहुत अधिक घबरा गया।

नाटक का वह अंतिम अंश अब मुझ बाध नहीं पाया। वह तो खैरियत यह थी कि मुझे अधिक कुछ भी नही करना था। केवल सिंहासन पर बैठ कर रामराज्य की स्थापना की बात कहनी थी। उस निराशा की मोच म मन वैसा कर भी दिया था। पर वास्तविकता यह थी कि मेरे व प्रयास यन्त्रचालित-से थे। मेरा मन तो वैसे मेरे भीतर से अनुपस्थित हो गया था।

शीघ्र ही नाटक समाप्त हो गया। सभी लोगो ने तालियाँ बजाकर हमारे नाटक की भूरि भूरि प्रशसा की।

लोगो ने खुश होकर हम सब बच्चो को पुरस्कार बाँटे थे। किसी को एक पुरस्कार मिला किसी को दो। लेकिन मुझे तीन पुरस्कार मिले थे। सभी ने मेरे अभिनय की सर्वाधिक प्रशसा की थी।

मैं लेकिन घबरा रहा था। मुझे तो बस चद्दरो का ही खयाल आ रहा था तब।

रामलीला के बाद हम लोगो ने सारे सामान इकट्ठे किए और सभी लोग अपनी अपनी चीज लेकर खुश-खुश घर चले गए। एक मैं ही घबराया हुआ वही अँधेरे म खडा रहा। फिर और उपाय न देखकर धीरे धीरे घर की ओर चल दिया। चद्दरें मेरे हाथ म थी।

घर पर जाते ही आशानुरूप व्यवहार ही मिला मुझे। मम्मी ने खाना देने से साफ इन्कार कर दिया। दिन भर मैं भूखा ही वहाँ पर व्यस्त था। अब भूख से अतडियाँ खिचती चली जा रही थी। चूहे बहुत जोरो से कूद रहे थे पेट म। मैं समझता था कम से कम मम्मी तो मेरे प्रति नरमाई से व्यवहार करेंगी और मेरे अभिनय म तथा लोगो द्वारा की गई उस प्रशसा से अभिभूत होगी। पर मम्मी के लिए चद्दरो का मूल्य कही अधिक था। वस्तु की हानि मेरी उपलब्धि से बढ़कर थी।

पापा ने फिर वे ही वाक्य दोहरा दिए जो मेरे द्वारा नुकसान कर दिए

जाने पर सदा स बोलते रहे थे। वही उनके द्वारा कमाई करके लान की कष्टप्रद चेष्टा और मेरे द्वारा घर लुटाए जाने की लापरवाही की बात। फिर डाँट की अंतिम परिणति के रूप म लकडी से दण्डित करने की अनिवाय बात भी व भूल नही पाए थे।

अपने अभिनय के कारण जहा मैं सभी लोगो की प्रशसा और शुभेच्छाओं का केन्द्र बन सका था वही अपने माता पिता के लिए भत्सना एव ताडना का पात्र मात्र बन सका। मैंने नुकसान जो कर दिया था उनका। चद्दरा के नुकसान के विष के समक्ष उन्होने मेरी उपलब्धियो के अमृत को अस्वीकार दिया था। और मुझे अपने ही घर से दण्डित होकर भूखा ही सो जाना पडा था उस रोज।

मेरी कलात्मक उपलब्धिय. का कितना सुन्दर पुरस्कार दिया था मम्मी पापा ने मुझे !

उपसहार

(आज का पप्पू)

आज मैं वे सभी बातें भूल गया हूँ। जिन्ह अब तक भूला नही हूँ उन्ह भी धीरे धीरे भूलता जा रहा हूँ। और करूँ भी क्या ? बस भी भूलना मेरी आदत नही मजबूरी हो गई है। घर से निकलता तो हूँ दोस्त क घर जाने के लिए परन्तु रास्ते म अपन म ही कही खाकर भूल जाता हूँ कि किसके घर जा रहा था ? क्यो जा रहा था ?

घर पर भी किसी चीज को रखकर उसे बिल्कुल भूल जाता हूँ। रात को निश्चय करता हूँ कि दूसरे दिन कमरे की सफाई करूँगा सुबह उठने तक दिमाग से वह विचार पूरी तरह धुन पुछ जाता है।

कही पर भी मन नही लगता। घर स बाहर रहता हूँ तो दोस्तो का ज्यादातर लडकियो और फिल्मो की बातें करते पाता हूँ। किसी लडकी का पीछा करने की योजना बनाई जाती है। अध्यापको को लेकर ऊल-जलूल बातें की जाती है। रोचक लगन पर भी मैं उनसे शीघ्र ही ऊब जाता हूँ। उनमे अधिक देर तक मन नही लगता मेरा। घिसी पिटी बेबुनियाद और एक सी बातो की पुनरावत्ति मे रम नही पाता मैं। भाग खडा होता हूँ मैं वहा से भी।

दोस्त भी कहते हैं 'अरे भाई! अब जरा शिष्टाचार स बातें करो। पण्डित देवता आ गए है। अब केवल शाकाहारी बातें ही चलेंगी। या कभी कोई अधिक करारा व्यग्य करते हुए कह देता है "इसके सामन लडकिया की बातें मत किया करो। यह तो बेचारा नाबालिग है अभी तक। पप्पू जो ठहरा आखिर।' सभी हँस पडते हैं। मैं और भी अधिक शर्मिन्दा

हो जाता हूँ। मौका देखकर खिसक जाता हूँ वहाँ से।

घर में रहने की इच्छा नहीं होती। क्योंकि घर तो जैसे काटने को दौड़ता है। घर से जो जुड़ाव और आत्मीयता आम तौर पर लोगों को होती है वैसी मुझे महसूस नहीं होती। आत्मीयता के जो बंधन परिवार के सदस्यों को बाँधकर एकजुट कर देते हैं वैसा कुछ भी हमारे घर में नहीं है। जिन बातों को लेकर परिवार एक इकाई का रूप धारण करता है वे भी नहीं हैं।

इसके विपरीत अपनी अपनी अलग दुनिया है हमारे घर में। जिसमें बाहर निकलकर दूसरे की दुनिया में प्रविष्ट होने के लिए या दूसरे के सहभागी बनने के लिए कोई तैयार नहीं होता। यहाँ तक कि किसी के बीमार पड़ जाने पर भी हमसे अपने दायरे से बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

ऐसा कोई प्रसंग अब हमारे यहाँ नहीं आता जो हमारे रिश्तों का सही परिभाषा दे सके। बिलकुल मशीनी जीवन जीते हैं हम। साथ रहते हुए भी दूर दूर। अपने होते हुए भी पराये पराये से। परिचित होते हुए भी अजनबी से।

पापा अपनी दुनिया में मशगूल हैं, मैं अपनी में।

एक घर में रहते हुए भी हमें एक दूसरे के बारे में कितनी कुछ जानकारी है? मैं समझता हूँ ज्ञात की समता में अज्ञात अधिक है।

पापा के दफ्तर के लोग, उनकी स्थितियाँ, उनकी रुचियाँ परेशानियाँ, उनके वर्तमान दोस्त आदि के बारे में क्या तो जानता हूँ मैं? कुछ भी तो ठीक से ज्ञात नहीं मुझको। अज्ञात हूँ ऐसा भी नहीं कह सकता सिर्फ आभास सा है। लोग ही बताते हैं उनके बारे में मुझे।

अभी कुछ दिनों पूर्व पापा की पदोन्नति हुई थी। सबके कहने पर एक बहुत बड़ी पार्टी दी थी पापा ने 'अम्बर' में। सबको बुलाया था। दोस्तों को। परिचितों को। दफ्तर वालों को। लेकिन मुझे उसकी सूचना तक नहीं दी पापा ने। बल्कि इसकी जरूरत भी महसूस नहीं की उन्होंने। उनकी दुनिया में मेरे लिए स्थान ही कहाँ है? कहीं किसी कोने में भी नहीं।

और यदि पापा मुझे उसकी सूचना दे देते तब भी क्या मैं उसमे सम्मिलित हो सकता था ? बल्कि मेरी कठिनाई ही बढती उससे। बोर ही होना मैं वहा जाकर। पापा की उस दुनिया से मैं जुडा हुआ जो न हूँ। उस अजनबी माहौल म अपरिचय की गधाती घोलन मे दम ही घुट जाता मेरा। अनचाही औपचारिकताओ का निर्वाह करना कितना दुष्कर हो जाता मेरे लिए। इसलिए एक तरह से बचही गया मैं। पापा न अच्छा ही किया जो मुझे निमन्त्रित नही किया। उनके परिवेश से मैं चाहकर भी जुड नही पाता, किसी भी रूप मे।

इसका कारण है। बचपन से ही उन्होंने मुझ अपनी दुनिया से बाहर रखा है। मैंने जब जब उनकी उस दुनिया मे प्रविष्ट होना चाहा तब-तब मुझ उससे बाहर धकेल दिया गया। बलात। सायास। साभिप्राय। अब मैं भी अपन एकाकीपन का इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि चाहकर भी पापा की उस दुनिया मे प्रविष्ट नही हो पाता। स्वय ही दूर दूर रहन लगा हूँ और किसी भी दशा मे उनके साथ घुलमिल नही पाता।

पापा क्या करत हैं ? उनके सुख दुख क्या हैं ? आज जब व अपन जीवन के सबसे बड़े अभाव के दौर म स गुजर रहे हैं तब कसे अपने अकेलेपन के दुवह बोझ को ढो रहे हैं ? पुत्र के रूप मे मैं उनके सामने हूँ फिर भी उनस कटा कटा, दूर दूर रहता हूँ। ऐसे समय वे क्या अनुभव कर रहे हैं ? इन बातो की मुझे तनिक-सी भी जानकारी नहीं है। न तो मैं ही जानने को उत्सुक हूँ और न पापा ही कुछ बतलाना चाहगे। उनके साथ रहते हुए भी मैं उनकी दुनिया म लगभग अनभिज्ञ हूँ।

वह तो जगदीश ही है जो आकर सारी सूचनाएँ दे देता है। मेरे साथ पढता था। अब पापा के दफ्तर म नौकरी पर लगा है। पापा की पापा के दफ्तर की सभी बातें वही आता है तब बतला जाता है। उसी ने तो बतलाया था कि आपातकाल के उन काले दिनो म पापा के खिलाफ एक बहुत बडी इन्क्वायरी आई थी। लगातार कागज आत रहे थे। यद्यपि पापा का पक्ष सबल था इसलिए अनिष्ट की सम्भावनाएँ बहुत कम थी, फिर भी परेशानी की बात तो थी ही।

पापा न उस बारे मे भी कुछ नही कहा था मुझस। अपने तक ही

सीमित रखते हुए सब कुछ झेल गए थे पापा।

कितना मुश्किल होता है ऐसा करना। दुःख में तो व्यक्ति उसे बाँट कर ही उससे मुक्त हो पाता है।

और फिर घर ही तो वह संस्था है जहाँ व्यक्ति अपना सब कुछ बाँट लिया करता है। अपने सुख को। दुःख को। खुशी को। गमी को। और हल्का हो जाता है। दूसरा कुछ और पाने के लिए। दूसरा कुछ और झेलने के लिए।

घर यदि ऐसी संस्था नहीं बन पाए तो व्यक्ति के दुःख भला कैसे दूर हो सकते हैं? सुख कैसे महिमावान बन सकते हैं?

आज यदि मैं चाहूँ भी तो क्या पापा के सुख-दुःख का भागीदार बन सकता हूँ? क्या स्वयं मेरी अपनी दुनिया में पापा का कहीं हस्तक्षेप है? क्या मेरा अपना अलग संसार नहीं है? पापा की तरह क्या मैं भी अपने में ही सीमित नहीं हूँ?

बचपन की उन वर्जनाओं निषेधों ने मुझे इसके लिए विवश कर दिया था कि मैं अपने लिए एक अलग दुनिया का निर्माण करूँ। एक ऐसी दुनिया जिसमें मम्मी-पापा का कोई दखल न हो। जो मेरी अपनी हो। नितान्त निजी।

कहाँ तो बच्चे अपने माता पिता से अपनी, दोस्तों की स्कूल की, बहिनजी की, खेलों की, फिल्मों की, पड़ौसियों की, उत्सवों की, इतिहास की, भूगोल की, विज्ञान की, देश की, विदेश की जाने कितनी बातें करते हैं। अपनी कहते है, उनकी सुनते हैं। बातचीत वह माध्यम बन जाती है जिससे रिश्ते स्वयं ही अटूट हो जाते हैं। सम्बन्ध अपने-आप गहरा जाते हैं। फिर व्यक्ति केवल अपने तक ही सीमित न रहकर दूसरों से भी जुड़ता चला जाता है। दूसरों की बातों से लगभग अनभिज्ञ न रहकर बहुत कुछ जानता रहता है। उनका सहभागी बनता रहता है।

पर मम्मी-पापा ने मुझे कभी ऐसा अवसर नहीं दिया। उन्होंने मुझे अपनी दुनिया से बाहर ही रखा। फलतः प्रेक्षक ही बने रहने की अपेक्षा मैंने स्वयं की स्वतंत्र दुनिया बनाना बेहतर समझा।

और आज अपनी दुनिया को भी मैंने इतना काट लिया है कि मैं अब

अपने एकाकीपन म ही अधिक सुरक्षित रह पाता हूँ। मेरे बारे म पापा कुछ अधिक जान लें यह मैं पसद नही करता। जानना चाहगे भी नही। यदि चाहें भी तो मैं उन्ह ऐसा करन नही दूगा।

ऐसा क्या हुआ ? आज जब उन सबके बारे म सोचता हूँ तो उस पौध की बरबस ही याद हो आती है।

मैं यह कहना तो भूल ही गया कि सूख जान के बाद भी कई बार वह पौधा मुझे स्वप्न म दिखलाई देता रहा। यदि यह कहूँ कि जान बूझकर आता रहा वह स्वप्न म तब भी कोई गलत बात नहीं होगी। रोजाना वह एक ही बात कहता मुझसे, "पप्पू ! तू समझता है मैं सूख गया था। मैं सूखा नही था। मैं अपनी गलती स नही मरा। मुझे मारा गया। हत्या की गई है मेरी। तरी मम्मी ने अपन उत्साह के अतिरेक से मुझे मार दिया। तेरे पापा ने अपनी उपेक्षा वृत्ति से मुझे मार दिया। तेर माता पिता न सुनियोजित षडयन्त्र कर हत्या कर दी मेरी।

मैं सच मच कहता हूँ पप्पू ! मुझे मारा गया है। सबसे पहले मुझे मेरी जमीन से काटा गया। फिर परिवेश से। फिर आवश्यकताओ से। और अन्त मे मरी जिजीविषा वृत्ति से। क्यो उन लोगो न मुझे मेरी हालत पर ही छोड नही दिया ? मुझे अपनी जमीन की जरूरत थी। अपने आकाश की। मेर अपन प्रकाश को। मेरी अपनी खाद की—वायु की—पानी की।

पर मुझे दी गई एक बे बुनियाद जमीन। धूमिल प्रकाश। टुकडा भर आसमान और अनुवर खाद। क्या ऐसे म मैं जिन्दा रह सकता था ? पप्पू ! मैंने जिन्दा रहन की पूरी कोशिश की। पूरी ताकत स मैंने अपनी मौत को टालने की चेष्टा की। पर सफल नही हो सका मैं। मेरे उत्साह को, मेरी अभिरुचि को, मरी अभिलाषाओ को नकारते हुए उन्होंने अपने उत्साह को, अपनी अभिरुचियो को और अपनी अभिलाषाओ को बलात मुझ पर लाद दिया। जिससे मैं जिन्दा रहना चाहकर भी मरने के लिए मजबूर हुआ। खिलना चाहते हुए भी मुरझाने के लिए विवश कर दिया गया। बढना चाहकर भी बढ नही पाया।

बोल पप्पू ! तू बोलता क्यो नही ? मेरी बातो का जवाब क्यो नही

देता मुझे ?" हर बार अन्त मे यही प्रश्न पूछता था वह मुझसे।

लेकिन तब मेरे पास कोई जवाब नही था उस पौधे के प्रश्नो का। वह आता। अपने आक्रोश को प्रकट करता। मेरे मम्मी पापा के आचरण की भर्त्सना करता। मुझसे अपने प्रश्नो का जवाब मांगता।

पर मैं अवाक् उसकी बातें सुनता रहता, जवाब कुछ भी नही दे पाता उसे। वह निरुत्तरित लौट जाता। पर दूसरे दिन रात को फिर आ धमकता स्वप्न मे। मैं किन्तु उसके प्रश्नो के जवाब नही दे पाता।

रोज रोज आने वाले उन स्वप्नो से तंग आकर आखिर एक दिन मैंने उसके सूखे निर्जीव डठल को उखाड फेंका था। जब तक उसका ठूठ मेरी आंखो के सामने रहा तब तक प्राय प्रतिदिन ही वह स्वप्न मे आता रहा मेरे पास। उस ठूठ को उखाड फेंकने पर ही कही जाकर वह अयाचित सिलसिला समाप्त हुआ था।

आज जब मैं स्वय अपनी स्थिति के बारे मे सोचता हूँ तो पाता हूँ कि मेरी स्थिति भी क्या उस पौधे जसी ही नही रही ? मेरा बचपन भी क्या उस पौधे की भाति अपनी जमीन मे पैर जमाने की अपेक्षा मम्मी-पापा की अभिलाषाओ के गुरुतर बोझ से बचते रहने की चेष्टा मे ही व्यतीत नही हुआ ?

अपने जीवन के उस स्वर्णिम काल मे जब मुझे अपने विकास की सम्भावनाओ को प्रकट करना चाहिए था, अपनी आत्म रुचि का स्वय निर्धारण करना चाहिए था, अपने को अधिकाधिक पनपाना चाहिए था, या धीरे धीरे विकसित होते हुए पल्लवित, पुष्पित और फलित होने के लिए सचेष्ट होना चाहिए था, तब मेरा सारा श्रम भय, आतक और खौफ से निरन्तर बचने मे ही खर्च होता रहा।

मैंने अपनी सारी शक्ति नई कोपलो के निर्माण मे लगाने की अपेक्षा अपने पर लादी गई जिम्मेदारियो के दुवह बोझो को ढोने मे ही लगा दी। जब मुझे अपने आत्मवर्धक तन्तुओ को प्रस्फुटित करना चाहिए था तब उसके स्थान पर मुझे गुरुतर उपदेशो, वर्जनाओ, प्रताडनाओ के आत्मघाती प्रतिरोधो से जूझते रहना पडा। इसलिए आज मैं वह नही हूँ जो मुझे बनना चाहिए था। किसी भी सूरत मे नही। किसी भी रूप

मे नहीं। पर अब क्या कर सकता हूँ मैं ?

जब मैं बच्चा था तब मुझसे वयस्कों का सा व्यवहार अपेक्षित किया गया। और आज जब मैं युवा हुआ हूँ तब पूरा प्रौढ ही हो गया हूँ। निस्सारताओ से आक्रान्त। जीवन की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न खड़े करता हुआ। निर्जीवों सी तन्द्रिल जड़ता को धारण करता हुआ। निरा आत्मकेन्द्रित। अनुर्वर अभिलाषाओ वाला। मुर्दा चेष्टाओ को ढोते रहने वाला। नि सज्ञ अनुभूतियों वाला। पर किसम कहूँ यह सब ?

य स्थितियाँ इतनी प्रबलता स प्रकट हुई थी कि आठवी कक्षा तक आते आते सब कुछ साफ और स्पष्ट हो गया था। मरे जीवन की गाडी को मुख्य पटरी से हटाकर दूसरी-तीसरी पटरी पर ठेल दिया गया।

पापा अफसर थे और इस दृष्टि से तनिक हीन भावापन्न कि वे बहुत बडे अफसर क्यो नहीं हुए ? इसलिए अपन जीवन की कमी को पापा मरे जीवन म पूरा करके देखना चाहते थे। पापा मुझे बहुत बडा अफसर देखना चाहते थे। एक आई० ए० एस०, जो कलेक्टर बनकर सारे जिले पर राज्य कर सके। एक रौबदार, ठाठदार जिन्दगी जिए। सभी लोग मेरे सामने झुके रहे एक इतना बडा अफसर।

मम्मी के लिए अफसरी साधारण-सी चीज थी। बहुत कुछ उपेक्षणीय। नितान्त अश्लाघनीय। क्योंकि पापा की अति व्यस्तता और नेताओ राजनेताओ के आगे की उनकी बेचारगी का उन्हे प्रत्यक्ष अनुभव था। इसलिए अफसरी से उन्हे चिढ हो आई थी। व मुझे जीवन म कुछ भी बना देखना स्वीकार सकती थी केवल एक अफसर नहीं। उनके लिए डाक्टरी का जो मूल्य था वह अफसरी का नहीं। एक ऐसा डाक्टर जो पैसे भी कमाता हो और सामाजिक प्रतिष्ठा भी पाता हो उसका मम्मी के जीवन मे सर्वाधिक महत्त्व था। मेरा मौसेरा भाई डाक्टर बनकर बहुत पसे कमा रहा था। कुछ समय के लिए विदेश भी रह आया था वह। इसलिए वही मम्मी के लिए आदर्श बन गया। मम्मी की कल्पनाएँ मुझे डाक्टर रूप मे ही देख रही थी। एक ऐसा डाक्टर जो पैसे कमाए, नाम कमाए और इगलैण्ड अमेरिका भी जा सके। ताकि लोग उनके लिए कह सकें, ईर्ष्या कर सकें कि "देखो इनकी तकदीर। इनका लड़का विदेश

जा रहा है।"

और मैं शायद तब जानता भी नहीं था कि मैं स्वयं क्या बनना चाहता हूँ बड़ा होकर। मेरी भावुकता, अतिशय सम्वेदनशीलता और रुचियां मुझे साहित्य की ओर खींचे ले जा रही थीं। उस बचपन से ही मैं उपन्यास, कहानी पढ़ने लगा था। प्रेमचन्द, शरत, रवीन्द्र, बंकिम, कालिदास शेक्सपियर, सबको पढ़ गया था मैं। कॉलेज में आते आते मैं उनका सारा साहित्य ही चाट गया था लगभग।

रंगमंच से तो मैं अनायास ही जुड़ गया था। बिल्कुल बाल्यकाल में ही जब मैं कृष्ण बना दिया गया था एक जन्माष्टमी को। फिर मैं रामलीलाओं का राम बना। फिर स्कूल के वार्षिक कार्यक्रमों में तो अनिवार्यत लिया जाने लगा। मेरी रुचियां शायद उसी दिशा में प्रवाहित होना चाहती थीं।

मम्मी पापा शुरू शुरू में तो मेरी उन उपलब्धियों से खुश ही हुए थे। उनका नाम जो होना था इसस। अह संतुष्ट होता था उनका। यश की भूख भी मिटती थी मेरी उन चेष्टाओं से तब तो। लेकिन अभिनय को मैं अपने जीवन का आधार ही बना लूं यह उन्हें अस्वीकार्य था। 'नौटंकी वाले' कहकर वे अभिनेताओं की बात पर नाक भौंह सिकोड़ लेते।

और साहित्यकार? भला यह भी कोई धंधा है? न पैसे का पता न आमदनी का। फक्कड़ों की तरह दर दर भटकते रहो और लिख लीं कभी दो चार पंक्तियां। कवि सम्मेलनों में लोगों ने तालियां बजा दीं कभी कभार। या किसी पत्रिका में कहानी छप गई। या अधिक से अधिक किसी पुस्तक पर हजार-दो हजार का छोटा मोटा पुरस्कार मिल गया। इससे अधिक क्या रखा है साहित्यकार बनने में? भला ऐसी मूर्खता में भी कोई तुक है?

इसलिए माध्यमिक शिक्षा पूरी करते करते मेरे जीवन में दो बातें होने लगीं। एक तो अंकुश और भी अधिक गहराने लगे। वर्जनाओं निषेधों की सूची हनुमान जी की पूंछ की भांति बढ़ती चली गई। और दूसरे मेरा जीवन परीक्षण-स्थल हो गया। मम्मी अपने ढंग से मोड़ने की चेष्टा करतीं। पापा अपने ढंग से। इस प्रक्रिया में अपनी अपनी

अभिरुचियो का परीक्षण करने लगे वे मेरे जीवन म ।

मम्मी ने इस दृष्टि मे पहल की। वे उत्साह से भर कर अधिक सजग-सचेष्ट हो गइ। पापा पहिले तो खीझे फिर झुल्लाए और फिर एकत्म विरत हो गए मुझस। अपनी चलती न देखकर पापा न मुझ पूरी तरह मम्मी के ही भरोस पर ही छोड दिया। घोर तटस्थता अपना ली पापा न मेरे जीवन से।

इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे जीवन म एक अन्धी दौड शुरू हुई। प्रकाश स दूर, काम्य से असम्बद्ध, अनदिखे लक्ष्य की ओर। जो वस्तुत था ही नही कही। इसलिए मेरे हिस्स म केवल दौड ही आई है। तभी तो मैं बन नही सका हूँ कुछ भी और आज थक हारकर जब मैं अपनी ओर देखता हूँ तो घोर निराशा ही होती है मुझे अपन जीवन स।

आज मैं भी उस पौध की भाँति मुरझाया हुआ खडा हूँ। निरा ठूंठ बना हुआ। मुझम न उत्साह की हरीतिमा है, न विकास की सम्भावनाएँ। न मस्ती न प्रफुल्लता। न कामनाओ के फूल ही खिलत हैं मुझमे न चेष्टाओ के मधुर फल। बस नीरस विरस जीवन जी रहा हूँ मैं।

मम्मी यदि आज होती तो क्या उसी तरह नहीं हो जाती जिस तरह उस पौध के मुरझाने पर हुई थी। पर आज मम्मी भी कहाँ है ?"

व तो बीच मे ही छोड गइ मुझ। पापा को। हम दोनो को।

यदि वे होती यो क्या उसी भोलेपन से पूछ न लेती पापा से 'सुना जी! जरा इस पप्पू की ओर तो दखिए। जान क्या हो गया है इसे ? न खाता है, न पीता है न कुछ करता धरता ही है। न हँसता ह। न मुस्कराता है। आलसी की तरह निकम्मपन से भरा पडा रहता है घर म ही।'

पापा तब शायद सारा का सारा दोष मम्मी पर ही थोपते हुए उप देशक की मुद्रा म जवाब दत "अब कुछ नही हो सकता इसका। बिलकुल ढल हो गया है यह। वस्तुत दोष तुम्हारा ही है। तुम्ही न इसे सिर पर चढा रखा था तब तो। न मरी दात ही मानी न इस पर ही भरोसा किया कभी। हर समय इसके इद गिद मँडराती रही। ऐसे कहा लालन पालन होता होगा बच्चो का ? यो देखभाल की जाती होगी बच्चो की कही ? अब कुछ नही होगा इसका।'

तब मम्मी आहत होकर वैसे ही दु खी स्वरो म बोल पडती, 'क्य किया था जो मैंने ? आप तो हमेशा दोष ही देखते रहते हैं मुझमें । ऐस क्या किया है मैंने जो आप या आरोप लगा रहे हैं मुझ पर ? सिफ प्या ही तो किया था मैंने । क्या बच्चो से प्यार करना कोई दोष ह ?"

तब पापा के पास कोई जवाब नही होता, मम्मी के इस उपालम्भ का । सिफ क धे उचकाकर वे अपनी खीज भर प्रकट कर देते और अन्य चले जाते।

मम्मी के न होने से वैसा प्रसग भी उठ नही सकता मेरे जीवन अब । लेकिन अपनी स्थिति के बारे मे विचार तो कर ही सकता हूँ मैं

क्या सचमुच मम्मी-पापा ही उत्तरदायी हैं मेरी इस स्थिति के लिए मैं जो जीवन मे पूरी तरह पराजित होकर कुछ भी बन नही सका भला किसे दोष दूं इसके लिए ? क्या मम्मी का लाड प्यार, स्नेह दुल या झिडकिया दोषी है इसके लिए ? या पापा की उपेक्षावृत्ति, तटस्थ बरतता या दूर दूर रहने का भाव ?

नहा नही, मुझे काई अधिकार नही है उनमें दोष ढढने का । असल क्या नही किया उन्होंने मेरे लिए ?

क्या मैं स्वय इसके लिए उत्तरदायी नही हूँ ? सच तो यह है कि खुद ही बन नही पाया कुछ भी । अब अपनी दुबलताओ से घबर उन्हे मम्मी-पापा म तलाश रहा हूँ मैं । अपनी न्यूनताओ से पल करते हुए उन पर आरोप लगाना चाहता हूँ ।

इसलिए ठीक ठीक कुछ भी नही समझ पाता हूँ मैं इस विश्लेषण समझ नही पाता कि दोष आखिर किसका है ? मम्मी का ? पापा का ? कि मेरा ? कि स्थितियो का ? कि सामाजिक व्यवस्था कि भारतीय जीवन पद्धति का ?

अपनी समूची जडता को एकबारगी तिलाजलि देकर मैंन जीवन को लिपिबद्ध किया है । आपके सामने इसे इसलिए रख कि आप शायद निणय ले सकें कि दोषी आखिर कौन है ? शाय सच को सही-सही बतला सकेंगे जिसे मैं समझ नही पाया हूँ । श